राजयोग संहिता

श्रीभारतधर्म महामण्डलके

शास्त्र प्रकाश विभागद्वारा प्रकाशित

सं० २०२८ प्रथमावृत्ति मूल्य १-५०

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक
श्रीभारतधर्ममहामण्डल
जगत्गंज, वाराणसी कैण्ट

प्राप्तिस्थान—
व्यवस्थापक, शास्त्रप्रकाश विभाग
श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्गंज, वाराणसी

मुद्रक
आनन्दकानन प्रेस
सी.के० ३६।२० ढुण्ढिराज
वाराणसी—१

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोग संहिता

श्रीभारतधर्म महामण्डलके

शास्त्र प्रकाश विभागद्वारा प्रकाशित

सं० २०२८ प्रथमावृत्ति मूल्य १-५०

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक

श्रीभारतधर्ममहामण्डल

जगत्गंज, वाराणसी कैण्ट

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक, शास्त्रप्रकाश विभाग

श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्गंज, वाराणसी

मुद्रक

आनन्दकानन प्रेस

सीके० ३६।२० ढुण्ढिराज

वाराणसी–१

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

उपासनाके दो अंग होते हैं। यथा भक्ति और योग। उपासनाका शरीर योग कहा जाता है और इसका प्राण भक्ति कही गयी है, वस्तुतः योगकेद्वारा स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीरका ऐसा निर्माण होता है, जिससे मन एकाग्र और शान्त हो जाय और ऐसे शान्त और एकाग्र मनको अनायास समाधिमें लगाया जा सके। योगके चार भेद हैं, यथा—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। योगशास्त्रका सिद्धान्त यह है कि मन्त्रयोग, हठयोग या लययोग इन तीनोंमें-से एककी भी सिद्धि हो जानेपर राजयोगका अधिकार साधकको स्वतः प्राप्त होता है। इन चारों योगोंकी क्रमवद्ध साधन-पद्धति थी। परन्तु कालक्रमसे वह नष्ट हो गयी थी। यद्यपि तथ्यों एवं पुराणोंमें योगकी क्रियाओंका यत्र-तत्र वर्णन है; परन्तु क्रमवद्ध उपर्युक्त चारों योगोंकी कोई पद्धति अप्राप्त हो गयी थी। श्रीभारत-धर्म महामण्डलके प्रतिष्ठाता मेरे परमाराध्य गुरुदेव भगवत् पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुने जैसे लुप्त दर्शनोंका आविष्कार किया वैसे ही चारों योगोंकी संहिताओंका भी अपने समाधियोगसे देखकर आविष्कार किया था। इन चारों संहिताओंमेंसे मन्त्रयोग संहिता एवं हठयोग संहिताका प्रकाशन श्रीभारतधर्ममहामण्डलके प्रकाशन विभागद्वारा अनेक वर्षों पहले हो चुका है। अनेक असुविधाओं एवं कठिनाइयोंकेकारण लययोग एवं राजयोग संहिताका प्रकाशन नहीं हो सका था। योगपथके पथिक साधकोंको हमें यह सूचित करते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है कि, इससे पहले गतवर्ष लययोग संहिताका प्रकाशन श्रीभारतधर्ममहामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभागद्वारा हो चुका है। पुनश्च अब अनेक वर्षोंसे अपेक्षित राजयोग संहिता भी प्रकाशित हुई। इस प्रकार चारों योगोंके साधनोंकी क्रमवद्ध शृंखला योगसाधनाके जिज्ञासुओंके-लिये सुलभ हो गयी है।

हमारे देशके अध.पतनके साथ-साथ सभी विषयोंमें पतन दिखायी देता है। इसी कारण वर्तमान समयमें योगकी क्रियाओंका प्रदर्शन केवल प्रदर्शन मात्रके-लिये किया जाता है। आधुनिक शिक्षित समाजमें योगके प्रयोजनका ज्ञान न

सं०

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

होनेसे ऐसे प्रदर्शनोंमें लोगोंकी बड़ी भारी रुचि दिखलायी देती है। परन्तु वस्तुतः योगसाधनका प्रयोजन प्रदर्शन नहीं है, योगसाधनका प्रयोजन स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीरकी अनुकूलता प्राप्त करके मनको एकाग्रकर समाधिकी प्राप्ति करना है। समाधिकी जिस अवस्थामें जीव और शिव, भक्त और भगवान् या आत्मा और परमात्माका मिलन हो जाता है, यही मनुष्य जीवनका अन्तिम लक्ष्य है और इतनी ही योगकी आवश्यकता है। उपासनाके ये जो दो भेद ऊपर कहे गये हैं, उसमें उपासनाका प्राण भक्ति कही जाती है। इसका तात्पर्य है कि, जिसप्रकार प्राणके बिना शरीर निर्जीव हो जाता है, इतना ही नहीं, उसकी कोई भी उपयोगिता नहीं रह जाती, इसीप्रकार भक्तिके विना योग निष्फल एवं निष्प्रयोजन है। योगपथके पथिक साधक ज्यों-ज्यों अन्तरजगत्में अग्रसर होते हैं, त्यों-त्यों सिद्धियाँ स्वतः आने लगती हैं। जो साधक उन सिद्धियोंमें फँसकर सिद्धियोंका प्रदर्शन करने लग जाता है, वह अपने लक्ष्यसे नीचे गिर जाता है और उसकी आध्यात्मिक उन्नतिका क्रम बन्द हो जाता है। इसी कारण भगवान् पतंजलि कृत योगदर्शनमें सिद्धियोंको अन्तराय अर्थात् योगविघ्न कहा गया है एवं साधकको सावधान किया गया है कि, जिससे वह सिद्धियोंमें न फँसे।

भगवत् पूज्यपाद प्रभु योगशास्त्रके मर्मज्ञ तथा सिद्ध राजयोग निष्ठ थे। उन्होंने भगवान् पतंजलिकृत योगदर्शनपर भाष्य भी किया है, किन्तु वह संस्कृतमें है, इससे जनसाधारणको जिन्हें संस्कृतका ज्ञान नहीं है, लाभ नहीं हो पाता था। पूज्यपाद गुरुदेव प्रभुका आजीवन यह प्रयास था कि, विविध परितापसे जर्जरित मनुष्य-जाति योग साधन और भक्तिकी सहायतासे अपनी आध्यात्मिक उन्नति करके परम शान्ति और कल्याणकी भागी बन सके।

राजयोग संहितामें चतुर्थ और अन्तिम योग राजयोगके साधनोंका वर्णन है। प्रथम मन्त्रयोग संहिताके साधनोंमें मन्त्रजप और इष्टदेवकी मूर्तिके ध्यानकी प्रधानता है। हठयोगरूपी द्वितीय योगसाधन पद्धतिमें ज्योतिर्ध्यान एवं शारीरिक क्रियाओंकी प्रधानता है। तृतीययोग लययोगकी साधन पद्धतिमें विन्दुध्यान एवं सूक्ष्म क्रियाओंकी प्रधानता है। चतुर्थयोग राजयोगमें सूक्ष्म क्रियाओंके साथ-साथ विचार एवं भावशुद्धिकी प्रधानता है। राजयोगकी समाधिको निर्विकल्पक समाधि कहते हैं। चारों योगोंके अंगों, उनके साधनों तथा समाधिके लक्षणोंको

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

उन मूल संहिताओंमें पढ़ना चाहिये। राजयोगका संबन्ध वेदान्तसे है। वेदान्त दर्शनमें वर्णित अन्तिम अनुभूति प्राप्त हो जानेपर और कुछ प्राप्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है। इसी वास्ते राजयोग साधनके परिपक्व अवस्थामें प्राप्त निर्विकल्प समाधिकी स्थिति जिस परम भाग्यशाली साधकको प्राप्त हो जाती है, उसे और कुछ प्राप्तव्य शेष नहीं रहता है। सब योगोंका राजा होनेके कारण ही इसे राज-योग कहा गया है। मन्त्रयोग, लययोग या हठयोगमें योग्यता प्राप्त करनेके पश्चात् ही योगीको राजयोगका अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार किसी वस्तुको रखनेकेलिये आधारकी आवश्यकता होती है। विना आधारके कोई वस्तु ठहर नहीं सकती है। इसीप्रकार राजयोगकी सिद्धि प्राप्त करनेकेलिये ही आधार अपेक्षित है। यह आधार या अधिकार राजयोगके पहलेके तीन योगोंमेंसे किसी एक योगके साधनमें सिद्धि प्राप्त हो जानेपर ही बनता है। यह आधार विशुद्ध और शान्त अन्तःकरण होता है। बिना अधिकारके राजयोगके साधन करनेके प्रयास करनेसे लाभकी जगह हानि होती है। आशा है—इस अमूल्य ग्रन्थसे योगी साधकजन लाभ उठायेंगे।

गुरुपूर्णिमा सं० २०२८

विद्यादेवी

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोग-संहिता

विषय-सूची

क्रमांक	विषय		श्लोक संख्या	पृष्ठ
१.	मङ्गलाचरणम्	...	१–८	१
२.	राजयोगलक्षणम्	...	१–१३	२– ३
३.	राजयोगाङ्गानि	...	१–१०	४– ५
४.	प्रथमसप्ताङ्गानि	...	१– ९	५– ६
५.	सप्तकर्मयोगभूमिकाः	...	१–१४	७– ९
६.	सप्तोपासनायोगभूमिकाः	...	१– ७	९–१०
७.	सप्तज्ञानयोगभूमिकाः	...	१–६२	१०–१८
८.	प्रथमसाधनम्	...	१–१४	१८–२०
९.	वैराग्यवर्णनम्	...	१–२५	२०–२३
१०.	भावसिद्धिविज्ञानवर्णनम्	...	१–२४	२३–२६
११.	राजयोगधारणावर्णनम्	...	१–११	२७–२८
१२.	प्रस्थानत्रयम्	...	१२–१७	२८–२९
१३.	समाधिवर्णनम्	...	१–११	२९–३०
१४.	समाधिलक्ष्यवर्णनम्	...	१२–१९	३१–३२
१५.	समाध्यङ्गानि	...	२०–२४	३२–३३
१६.	हठयोगसमाधिलक्षणम्	...	२५–२७	–३३
१७.	लययोगसमाधिलक्षणम्	...	२८–२९	३४–
१८.	राजयोगावश्यकतावर्णनम्	...	१–११	३४–३६
१९.	राजयोगक्रमवर्णनम्	...	१– ४	–३६
२०.	अधिकारिलक्षणम्	...	– ५	–३७
२१.	वैराग्यस्वरूपम्	...	– ६	–३७
२२.	वस्तुविवेकस्वरूपम्	...	– ७	–३७
२३.	शमदमलक्षणम्	...	– ८	–३७
२४.	उपरतितितिक्षालक्षणम्	...	– ९	–३८
२५.	श्रद्धासमाधानलक्षणन्	...	–१०	–३८
२६.	मुमुक्षालक्षणम्	...	११–१२	–३८
२७.	अज्ञानस्वरूपम्	...	१३–१७	३९–
२८.	कर्मविज्ञानम्	...	१८–७०	४०–४६

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोग-संहिता

मङ्गलाचरणम्

आदिमध्यान्तपूर्णस्य बाह्याऽभ्यन्तरतस्तथा ।
परात्मने नमस्तस्मै सर्व्वपूर्णाय शाश्वते ॥१॥
यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यः सर्वे सर्वतश्च यः ।
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥२॥
मरीच्यत्र्यङ्गिरोऽगस्त्याः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वेदव्यासो वसिष्ठोऽथ याज्ञवल्क्यो मनुस्तथा ॥३॥
वाल्मीकिविष्णुहारीतोशनसो यम एव च ।
आपस्तम्बश्च सांवर्त्तः कात्यायनबृहस्पती ॥४॥
शातातपो भरद्वाजः कपिलो गौतमस्तथा ।
पतञ्जलिकणादौ च कश्यपोऽथ पराशरः ॥५॥
मार्कण्डेयः कौशिकश्च रोमशः शङ्ख एव च ।
कण्व - शाण्डिल्यलिखितदत्तजैमिनिनारदाः ॥६॥
वामदेवोऽथ भरतस्तथा च भृगुपाणिनी ।
एवमाद्याः पूज्यपादा ऋषयो यत्कृपावशात् ॥७॥
अत्र भूवलये शश्वदात्मज्ञानं प्रकाशितम् ।
आरभ्यते राजयोगसंहिता तान्प्रणम्य वै ॥८॥

मङ्गलाचरण

आदिपूर्ण, मध्यपूर्ण, अन्तःपूर्ण, भीतरपूर्ण, बाहरपूर्ण और सर्वपूर्ण परमात्माको नमस्कार है ॥१॥ जिसमें सब है, जिससे सब है, जो सब है और जो सर्वतः है, ऐसे और सर्वात्मा देवको नमस्कार है ॥२॥ अङ्गिरा, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अगस्त्य, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, मनु, विष्णु, हारीत, उशना, यम, आपस्तम्ब, सांवर्त्त, कात्यायन, वृहस्पति, शातातप, भरद्वाज, कपिल, गौतम, कणाद, कश्यप, पतञ्जलि, पराशर, विश्वामित्र, मार्कण्डेय, रोमश, शङ्ख, लिखित, दत्त, कण्व, शाण्डिल्य, जैमिनि, भृगु, पाणिनि, नारद, वामदेव, और भरत- आदि पूज्यचरण ऋषि, जिनकी कृपासे जगत्‌में आत्मज्ञानका विकाश हुआ है और जिनकी परम्परारूपसे कृपा प्राप्त करके जगत्‌के सम्पूर्ण मानव ज्ञानलाभ करते हैं, उनको बार-बार प्रणाम करके राजयोग-संहिता प्रारम्भकी जाती है ॥३-८॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोगलक्षणम्

सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुता मनसि स्थिता ।
तत्साहाय्यात्साध्यते यो राजयोग इति स्मृतः ॥१॥
अन्तःकरणभेदास्तु मनोबुद्धिरहङ्कृतिः ।
चित्तञ्चेति विनिर्दिष्टाश्चत्वारो योगपारगैः ॥२॥
सङ्कल्पोऽथ विकल्पश्च मनसः परिकीर्त्तितौ ।
निश्चयात्मा भवेद् बुद्धिश्चित्तं संस्कारधारकम् ॥३॥
अहन्ताममतायुक्तोऽहङ्कारः कथ्यते बुधैः ।
मनोबुद्धिचित्तमतिमहद्ब्रह्मा महानसौ ॥४॥
अन्तःकरणपर्य्यायवाचकाः कथिता बुधैः ।
तदन्तःकरणं दृश्यमात्मा द्रष्टा निगद्यते ॥५॥
हेतुदृश्यं भवेदन्तःकरणं कार्य्यदृश्यकम् ।
विश्वमेतत्तयोः कार्य्यकारणत्वं सनातनम् ॥६॥
दृश्यद्रष्ट्रोश्च सम्बन्धात्सृष्टिर्भवति शाश्वती ।
चाञ्चल्यं चित्तवृत्तीनां हेतुमत्र विदुर्बुधाः ॥७॥

राजयोग लक्षण

अन्तःकरण ही सृष्टिस्थितिलयका कारण है, उस अन्तःकरणकी सहायतासे जो साधन किया जाता है, उसको राजयोग कहते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार अन्तःकरणके ये चार भेद योगपारगामी ऋषियोंने कहे हैं। सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन, सदसत् निश्चयात्मिका बुद्धि, संस्कारधारक चित्त और अहन्ता ममता प्रतिपादक अहङ्कार है। मन, बुद्धि, चित्त, मति, महत्, महान् और ब्रह्मा ये सब अन्तःकरणके पर्यायवाचक शब्द हैं। अन्तःकरण दृश्य और आत्मा द्रष्टा हैं। अन्तःकरणरूपी कारणदशासे जगद्रूपी कार्यदशाका सम्बन्ध है। अतः विश्वकेसाथ अन्तःकरणका कार्यकारण सम्बन्ध सनातन है। दृश्यसे द्रष्टाका सम्बन्ध स्थापित होनेपर सृष्टि होती है। चित्तवृत्तिका चाञ्चल्य ही इसका कारण है ॥७॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

यथा तटाके स्थिरतामापन्ने वीचिजालके ।
यथातथं हि सूर्य्यस्य स्वरूपं प्रतिविम्बति ॥८॥
चित्तवृत्तीर्निरुद्ध्यैव योगेन नितरां तथा ।
परात्मरूपमन्तःकरणे शश्वत् प्रकाशते ॥९॥
वृत्तीर्जित्वा राजयोगः स्वस्वरूपं प्रकाशयेत् ।
विचारबुद्धेः प्राधान्यं राजयोगस्य साधने ॥१०॥
ब्रह्मध्यानं हि तद्ध्यानं समाधिर्निर्विकल्पकः ।
तेनोपलब्धसिद्धिर्हि जीवन्मुक्तः प्रकथ्यते ॥११॥
उपलब्धमहाभावा महाबोधान्विताश्च वा ।
महालयं प्रपन्नाश्च तत्त्वज्ञानावलम्बतः ॥१२॥
योगिनो राजयोगस्य भूमिमासादयन्ति ते ।
योगसाधनमूर्द्धन्यो राजयोगोऽभिधीयते ॥१३॥

जिसप्रकार जलाशयमें तरङ्गोंके स्थिर हो जानेपर उसमें सूर्यका यथार्थ स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उसीप्रकार योगद्वारा चित्तवृत्ति निरुद्ध होनेपर परमात्माका स्वरूप प्रकट होता है। वृत्तिजयपूर्वक स्वस्वरूपका प्रकाश करना राजयोग कहलाता है। राजयोग साधनमें विचारबुद्धिका प्राधान्य रहता है, विचारशक्तिकी पूर्णताद्वारा राजयोगका साधन होता है। राजयोगके ध्यानको ब्रह्मध्यान कहते हैं। राजयोगकी समाधिको निर्विकल्प समाधि कहते हैं। राजयोगसे सिद्धि प्राप्त महात्माका नाम जीवन्मुक्त है। महाभाव प्राप्त योगी तत्त्वज्ञानकी सहायतासे राजयोग भूमिमें अग्रसर होते हैं। राजयोग सब योग साधनोंमें श्रेष्ठ है और साधनकी चरम सीमा है, इसकारण इसको राजयोग कहते हैं ॥८-१३॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोगाङ्गानि

कलाषोडशकोपेतराजयोगस्य षोडश ।
प्रोक्तान्यङ्गानि वै योगशास्त्रे योगविशारदैः ॥१॥
सप्त चाङ्गानि विद्यन्ते सप्त ज्ञानानुसारतः ।
विचारमुख्यं तज्ज्ञेयं साधनं बहु तस्य च ॥२॥
धारणाङ्गे द्विधा ज्ञेये प्रकृतिब्रह्मभेदतः ।
ध्यानस्य त्रीणि चाङ्गानि विदुः पूर्वे महर्षयः ॥३॥
विराड्ध्यानं चेशध्यानं ब्रह्मध्यानं यथाक्रमम् ।
ब्रह्मध्याने समाप्यन्ते ध्यानान्यन्यानि निश्चितम् ॥४॥
चत्वार्यङ्गानि विद्यन्ते समाधेरिति योगिनः ।
सविचारं द्विधाभूतं निर्विचारं तथैव च ॥५॥
इत्थं संसाधयन् राजयोगस्याङ्गानि षोडश ।
कृतकृत्यो भवत्याशु राजयोगपरो नरः ॥६॥

राजयोगके अङ्ग

योगशास्त्रमें योगिराजोंने षोडश कलासे पूर्ण राजयोगके षोडश अङ्ग कहे हैं। सप्तज्ञानभूमियोंकेअनुसार सात अङ्ग हैं, वे सब विचार प्रधान हैं। उनके साधन अनेकप्रकारके हैं। धारणाके दो अङ्ग हैं, प्रकृति धारणा और दूसरा ब्रह्म धारणा। ध्यानके तीन अङ्ग पूर्वाचार्योंने कहे हैं:—यथाक्रम विराट्ध्यान, ईशध्यान और ब्रह्मध्यान। ब्रह्मध्यानमें ही सबकी परिसमाप्ति हैं। समाधिके चार अङ्ग हैं, दो प्रकारकी सविचार समाधि और दो प्रकारकी निर्विचार समाधि ॥१-५॥

इस प्रकारसे राजयोगके षोडश अङ्गोंके साधनद्वारा राजयोगी साधक बहुत शीघ्र कृतकृत्य होता है। मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग, इन तीनोंमें सिद्धिलाभके अनन्तर अथवा किसी एकमें सिद्धिलाभ करनेके अनन्तर साधक राजयोगका पूर्णाधिकार प्राप्त होता है। वस्तुतः हठ और राज ये दो ही प्रकारके योग हैं। हठसे अनुष्ठान होनेके-कारण

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

मन्त्रे हठे लये चैव सिद्धिमासाद्य यत्नतः ।
पूर्णाधिकारमाप्नोति राजयोगस्य साधकः ॥७॥
वस्तुतो द्विविधा योगी हठराजप्रभेदतः ।
हठसम्बन्धतो मन्त्रो लयोऽपि हठशब्दभाक् ॥८॥
राजसाहाय्यतस्तेषां त्रयाणां साधकाः खलु ।
अन्ते सिद्धिं लभन्तेऽस्माद् योगानां राजतोऽपि च ॥९॥
राजयोग इति प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ।
समाधी राजयोगस्य समाधिरेव वस्तुतः ॥१०॥

प्रथम सप्ताङ्गानि

सप्तदर्शनविज्ञानं विज्ञेयं विधिपूर्वकम् ।
समीक्षणार्थकत्वाद्धि दर्शनं वै हितप्रदम् ॥१॥
सप्तज्ञानात्मकभुवः परं तत्त्वावलोकनम् ।
कथं भवति वेदैश्च शास्त्राद्यैरधिगम्यताम् ॥२॥
निमित्तकारणीभूतं सृष्टेर्ब्रह्मेति बोधनम् ।
षोडशानां पदार्थानां तत्वाप्तिर्ज्ञानतः स्फुटम् ॥३॥

मन्त्र और लययोग भी हठके ही अन्तर्गत हैं। इन तीनोंके ही साधक राजयोगकी ही सहायतासे अन्तमें सिद्धिलाभ करते हैं और यही सब योगोंका राजा है, इसलिये इसको राजयोग कहते हैं। राजयोगकी समाधि ही वास्तवमें समाधिपदवाच्य है ॥६-१०॥

प्रथम सप्ताङ्ग

सप्तदर्शन विज्ञानको सप्त दर्शनोंकी सहायतासे समझ लेना पड़ता है। दर्शनका अर्थ देखना है। सप्तज्ञान भूमिकासे परमतत्त्वका अवलोकन कैसे होता है, सो प्रथम आचार्य, वेद और शास्त्रकी सहायतासे समझना पड़ता है। परमाणुकी नित्यता, ब्रह्मको सृष्टिका निमित्त कारण देखना, षोडश पदार्थके ज्ञानद्वारा परमतत्त्वकी प्राप्ति करना यह प्रथम

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

परमाणोश्च नित्यत्वं प्रथमं भूमिदर्शनम् ।
धर्माधर्मौ विनिर्णीय षट्पदार्थं विचार्य्य वै ॥४॥
परतत्त्वोपलब्धिश्च द्वितीयं भूमिदर्शनम् ।
वृत्तयो जगतो मूलं रुद्धास्ता यत्नपूर्वकम् ॥५॥
परतत्त्वोपलब्धिर्हि तृतीया भूमिका मता ।
विदित्वा प्रकृतिं सम्यक् परतत्त्वावबोधनम् ॥६॥
कथयन्ति बुधा एतत्तुरीयं भूमिदर्शनम् ।
प्राधान्यात्कर्म्मणो ब्रह्म जगदेवेति निश्चयः ॥७॥
पञ्चमी भूमिका सेयं निर्दिष्टा तत्त्ववेदिभिः ।
भक्तेः प्रधानताहेतोर्ब्रह्मैव निखिलं जगत् ॥८॥
येयं बुद्धिर्विनिर्दिष्टा सा षष्ठी भूमिका मता ।
ज्ञानाधिक्यादहं ब्रह्मास्मीति धीः सप्तमी भवेत् ॥९॥

भूमिकाका दर्शन है। धर्माधर्म-निर्णय और षट् पदार्थोंके ज्ञानद्वारा परमतत्त्वका ज्ञानलाभ करना यह दूसरी भूमिकाका दर्शन है। जगत्की मूल वृत्तियाँ हैं। अतः चित्तवृत्तियोंके निरोधद्वारा परमतत्त्वका लाभ करना तृतीय भूमिका दर्शन है। प्रकृतिको सम्यक् प्रकारसे जानकर परमतत्त्वका साक्षात्कार करना चतुर्थ भूमिकाका दर्शन है। कर्मकी प्रधानतासे जगत् ही ब्रह्म है, यह दर्शन पञ्चम भूमिकाका है। भक्तिकी प्रधानतासे ब्रह्म ही जगत् है, यह दर्शन षष्ठ भूमिकाका है और मैं ही ब्रह्म हूँ, इस ज्ञानकी प्रधानतासे यह दर्शन सप्तम भूमिकाका है ॥१-९॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

सप्त कर्मयोगभूमिका

योगभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ॥१॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थीस्यात् ततोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्य्यगा स्मृता ॥२॥
आसामन्ते स्थिता मुक्तिस्तस्यां भूयो न शोचते ।
एतासां भूमिकानां त्वमिदं निर्वचनं शृणु ॥३॥
स्थितः किं मूढ एवाऽस्मि प्रेक्ष्येऽहं साधुसज्जनैः ।
वैराज्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥४॥
शास्त्रसज्जनसम्पर्क - वैराग्याभ्यासपूर्वकम् ।
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥५॥
विचारणा शुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेष्वसक्तता ।
यत्र सा तनुताभावात्प्रोच्यते तनुमानसा ॥६॥
भूमिका त्रितयाऽभ्यासाच्चित्तेऽर्थे विरतेर्वशात् ।
सत्त्वात्मनि स्थितिः शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥७॥

सप्त कर्मयोग भूमिका

पहली कर्मभूमिकाका नाम शुभेच्छा, दूसरीका विचारणा, तीसरीका तनुमानसा, चौथीका सत्वापत्ति, पाँचवींका असंसक्ति, छठवींका पदार्थाभाविनी आठवींका नाम तुर्य्यगा है। इन सप्तप्रकारकी कर्मभूमियोंके अन्तमें मुक्तिप्राप्ति होती है। मुक्तिलाभ होनेपर कुछ भी चिन्ता नहीं रहती है। इन भूमियोंके पृथक्-पृथक् लक्षण इसप्रकार हैं। वैराग्य उदय होनेसे "मैं मूढ होकर क्यों बैठा हूँ, मैं गुरु और शास्त्रकी सहायतासे ईश्वरका अवलोकन करूँगा" इसप्रकारकी जो इच्छा होती है, उसको बुधगण शुभेच्छा कहते हैं। शास्त्र सज्जनासङ्ग और वैराग्याभ्यासपूर्वक जिससे सदाचारमें प्रवृत्ति हो, उसको विचारणा कहते हैं। शुभेच्छा और विचारणाद्वारा इन्द्रियार्थ वस्तुमें जो अनासक्ति होती है, उसको तनुमानसा कहते हैं। क्योंकि इस अवस्थामें मन अत्यन्त क्षीणप्रभ हो जाता

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

दशाचतुष्टयाऽभ्यासाद् असङ्गफलेन च।
रूढसत्त्वचमत्कारात् प्रोक्ताऽसंसक्तिनामिका ॥८॥
भूमिका पञ्चकाभ्यासात् चात्मारामतया दृढम्।
आभ्यन्तराणां बाह्यान्तं पदार्थानामभावनात ॥९॥
परप्रयुक्तेन चिरं प्रयत्नेनार्थभावनात्।
पदार्थभाविनी नाम्नी षष्ठी संजायते गतिः ॥१०॥
भूमिषट्कचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भतः।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्य्यगा गतिः ॥११॥
योगो हि कर्म्मनैपुण्यं कर्म्मयोगेन तेन वै।
अतिक्रमन् सप्तयोगभूमिकामधिगम्यते ॥१२॥

है। इन तीनों भूमिकाओंके अभ्याससे वाह्य पदार्थोंसे मनकी विरति होनेसे शुद्ध आत्माके विषयकी अवस्थिति होती है, उसको सत्त्वापत्ति कहते हैं ॥१-७॥

पूर्वोक्तदशाचतुष्टयके अभ्यासद्वारा चित्त वाह्य और आन्तरिक पदार्थोंसे निवृत्त हो जाता है। जब बाह्य और आन्तरिक संस्कारोंके लोपरूप समाधि फल प्राप्त हो जाँय और परमानन्दमय अपरोक्ष नित्य, परब्रह्मका साक्षात्कार हो जाय, तब चित्तमें एक चमत्कारिता होती है, उसी अवस्थाका नाम असंसक्ति है। उक्त पञ्च भूमियोंके अभ्याससे "मैं ही वह ब्रह्म हूँ" इसप्रकारकी भावना दृढ हो और आभ्यन्तर और बाह्य किसी अन्य पदार्थकी भावना शेष न रहे, उस अवस्थाका नाम पदार्थभाविनी है। उसी समय भेदबुद्धि नष्ट हो जाती है और शरीर धारण उपयोगी व्यापारोंके सिवाय अन्य व्यापार नहीं होते हैं और किसीप्रकारकी भी अपनी चेष्टा वर्तमान नहीं रहती है। क्रमशः इन छः ज्ञानभूमियोंका अभ्यास दृढ़ हो जाँय और किसी भी वस्तुमें भेदबुद्धि न रहे, केवल ब्रह्मस्वरूपमें अवस्थिति हो, उस भूमिकाका नाम तुर्यगा है। सुकौशलपूर्ण कर्मको योग कहते हैं। सुकौशलपूर्ण कर्मयोगकेद्वारा राजयोगी सप्त कर्मयोग भूमिकाओंका अतिक्रमण करता हुआ जीवन्मुक्त पदवी प्राप्त करता है। उस समय कुलाल चक्रवत् स्थित रहकर अवशेष प्रारब्धभोग करता है। जीव केन्द्र नाश करके भगवत्केन्द्रसे चालित

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

जीवन्मुक्तपदं नित्यं राजयोगस्य साधकः ।
कुलालचक्रप्रतिमः प्रारब्धं कर्म्मं भुञ्जते ॥१३॥
विनाशाज्जीवकेन्द्रस्य हीशकेन्द्रेण चाल्यते ।
जगद्धितार्थं कुर्वाणो न करोति तथापि सः ॥१४॥

सप्तोपासनायोगभूमिकाः

प्रथमा भूमिका नामपरा रूपपराऽपरा ।
स्याद्विभूतिपरा नाम्ना तृतीया भूमिका मता ॥१॥
यथाशक्तिपरा नाम चतुर्थी भूमिका भवेत् ।
एवं गुणपरा ज्ञेया भूमिका पञ्चमी बुधैः ॥२॥
षष्ठी भावपरा सप्तमी स्वरूपपरा स्मृता ।
लक्ष्यैक्यं धारणाध्यानसमाधीनां तु यद्भवेत् ॥३॥
संयमः प्रोच्यते तद्धि यतिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
परात्मप्रेक्षणं तेन प्रथमा दिव्यनामसु ॥४॥
तद्दर्शनं दिव्यरूपे द्वितीया भूमिका भवेत् ।
दर्शनं तस्य भूत्यादौ तृतीया किल भूमिका ॥५॥

होकर भगवत्कार्य्यमें प्रवृत्त रहता है। जगत्हितार्थ वह राजयोगी सब कुछ करता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है ॥८-१४॥

सप्त उपासनायोग भूमिकायें

उपासनाकी प्रथम भूमिका नाम "नामपरा" है। दूसरीका नाम "रूपपरा" है। तीसरीका नाम "विभूतिपरा" है। चौथीका नाम "शक्तिपरा" है। पाँचवींका नाम "गुणपरा" है। षष्ठीका नाम "भावपरा" है और सप्तमीका नाम "स्वरूपपरा" है। धारणा, ध्यान और समाधि इनतीनोंकी एक लक्ष्यता ही संयम है। संयमकेद्वारा दिव्य नाममें परमात्माको देखना प्रथमा भूमिका है। दिव्य रूपमें उनको देखना द्वितीया है। विभूतियोंमें उनको देखना तृतीया है। स्थूल और

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

शक्तिषु स्थूलसूक्ष्मासु चतुर्थी सत्समीक्षणम् ।
त्रिगुणे दर्शनं तस्य पञ्चमी भूमिका मता ॥६॥
षष्ठी त्रिभावे विज्ञेया स्वरूपे सप्तमी मता ।
इमामुपासनाभूतिं प्राप्य सम्यक् प्रयत्नतः ॥
पराभक्तियुतो जीवन्मुक्तः प्राप्नोति तत्पदम् ॥७॥

सप्त ज्ञानयोगभूमिकाः

सप्तानां ज्ञानभूमीनां प्रथमा ज्ञानदा भवेत् ।
सन्न्यासदा द्वितीयास्याच्तृतीया योगदास्मृता ॥१॥
लीलोन्मुक्तिश्चतुर्थी स्यात्पञ्चमी सत्पदा मता ।
षष्ठ्यानन्दपदा ज्ञेया सप्तमीच परात्परा ॥२॥
यावज्जीवैरतिक्रान्ता न सप्ताऽज्ञानभूमयः ।
तावन्न प्रथमाभूमिर्ज्ञानस्य ज्ञानदाऽऽप्यते ॥३॥
उद्भिज्जानां चिदाकाशे प्रथमाऽज्ञानभूमिका ।
स्वेदजानां चिदाकाशे सा द्वितीया प्रकीर्त्तिता ॥४॥

सूक्ष्म शक्तियोंमें उनको देखना चतुर्थ है। त्रिगुणमें उनको देखना पञ्चम है। त्रिभावमें उनको देखना सप्तम है। इस भूमिकाको प्राप्त करके पराभक्तिका अधिकारी जीवन्मुक्त परमानन्द पद लाभ कर लेता है ॥१-७॥

सप्त ज्ञानयोग भूमिकायें

सातों ज्ञानभूमियोंमेंसे प्रथमा ज्ञानदा, द्वितीया सन्यासदा, तृतीया योगदा, चतुर्थी लीलोन्मुक्ति, पञ्चमी सत्पदा, षष्ठी आनन्दपदा और सप्तमी परात्परा है। जबतक जीव सप्त अज्ञानभूमियोंका अतिक्रमण नहीं करता है, तबतक प्रथम ज्ञानभूमि ज्ञानदाकी प्राप्ति नहीं होती है। उद्भिज्जोंके चिदाकाशमें प्रथम अज्ञान भूमि है, स्वेदजोंके चिदाकाशमें द्वितीय अज्ञान भूमि कही गयी है। अण्डजोंके चिदाकाशमें तृतीय

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयाऽण्डजजातेश्चाऽज्ञानभूमिश्चिदाश्रिता ।
जरायुजपशूनां च चिदाकाशे चतुर्थ्यसौ ॥५॥
पञ्चकोषप्रपूर्णत्वाऽधिकारिष्वेव वै नृषु ।
सन्ति शेषा अधिकृतास्तिस्त्रस्त्वज्ञानभूमयः ॥६॥
तिस्रस्ता एव कथ्यन्त उत्तमाधममध्यमाः ।
एता अज्ञानभूमीर्हि तिसृरेव समूलतः ॥७॥
मूर्त्तिमन्तः स्वयंवेदा निराकर्त्तुं समुद्यताः ।
अधमाऽज्ञानभूमौ हि यावन्मर्त्यः प्रसज्जते ॥८॥
कृतेऽपराधेदण्डः स्यात्तिर्य्यग्योनौ तदुद्भवः ।
मध्यमाऽज्ञानभूमेश्च मानवैरधिकारिभिः ॥९॥
पितृलोकास्तथा नूनं नरकाश्च पुनः पुनः ।
प्राप्यन्ते मृत्युलोकश्च सुखदुःखादिपूरितः ॥१०॥
ददात्यूर्द्ध्वश्च स्वर्लोकमुत्तमाऽज्ञानभूमिका ।
अधमां ज्ञानभूमिश्च प्राप्ता मर्त्या भवन्त्यहो ॥११॥
देहात्मवादिनोऽनार्य्या नास्तिकाः शौचवर्जिताः ।
मध्यमाऽज्ञानभूमेस्तु मानवा अधिकारिणः ॥१२॥

अज्ञानभूमि है और जरायुज पशुओंके चिदाकाशमें चतुर्थ अज्ञानभूमि है। पाँच कोषोंकी पूर्णताकी अधिकारिणी मनुष्य योनिमें ही शेष तीनों अज्ञानर्भूमियोंका अधिकार है ॥१-६॥

वे ही तीनों उत्तम, मध्यम और अधम अज्ञान भूमियाँ कहलाती हैं। इन्हीं तीनों अज्ञान भूमियोंके समूल निराकरणकेलिये वेद स्वयं मूर्त्ति धारण करके प्रवृत्त हैं। अधम (पञ्चम) अज्ञानभूमिमें जबतक मनुष्य फँसा रहता है, उसको अपराध करनेपर तिर्यक् योनिकी प्राप्ति दण्डरूपसे हुआ करती है। मध्यम (षष्ठ) अज्ञानभूमिके अधिकारी मनुष्योंको पितृ-लोक नरकलोक और सुख-दुःखपूर्ण मृत्युलोककी प्राप्ति बार-बार होती है। उत्तम (सप्तम सर्वोन्नत) अज्ञानभूमि अर्द्ध स्वर्गलोक प्रदानकारी है। अहो! अधम अज्ञानभूमि प्राप्त मनुष्य नास्तिक, देहात्मवादी, अशुचि और अनार्य होते हैं, परन्तु मध्यम अज्ञानभूमिके अधिकारी मनुष्य

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

आस्तिकत्वेन प्रख्याताः सद्विचारपरायणाः ।
देहात्मनोर्हि पार्थक्यं विश्वसन्तोऽपि सर्व्वथा ॥१३॥
इन्द्रियाणां सुखे मग्ना नितरामैहलौकिके ।
विस्मरन्ति महामूढ़ाः सुखं ते पारलौकिकम् ॥१४॥
उत्तमाऽज्ञानभूमेर्वै पुण्यवन्तोऽधिकारिणः ।
आत्माऽतिरिक्तं शक्तेर्हि मत्वाऽस्तित्वं निरन्तरम् ॥१५॥
स्वर्गीयस्य सुखस्यैव जायन्ते तेऽधिकारिणः ।
अधमाऽज्ञानभूमिर्वै तमोमुख्या विजृम्भते ॥१६॥
तमो रजःप्रधाना च मध्यमाऽसौ प्रकीर्त्तिता ।
उत्तमाऽज्ञानभूमिश्च रजः सत्त्वप्रधानिका ॥१७॥
शुद्धसत्त्वविकाशस्य स्थूले नूनं यथाक्रमम् ।
पुण्यभाजां मनुष्याणां चित्ताऽऽकाशे ततो ध्रुवम् ॥१८॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनामधिकाराः क्रमेण हि ।
समुद्यन्ति ध्रुवं देवदुर्लभानां स्वभावतः ॥१९॥
ज्ञानभूम्यश्च सप्तैताः साधकान्तर्हृदि क्रमात् ।
शुद्धं सत्त्वगुणं सम्यग्वर्द्धयन्तो निरन्तरम् ॥२०॥
निःश्रेयसपदं नित्यं गुणातीतं नयन्त्यलम् ।
यत् किञ्चिदासीज् ज्ञातव्यं ज्ञातं सर्वं मयेति धीः ॥२१॥

आस्तिक होनेसे देहसे आत्माकी पृथक्तापर सर्वथा विश्वास करते हुए और सद्विचार परायण होते हुए भी वे महामूढ़ ऐहलौकिक इन्द्रिय सुखमें अत्यन्त मग्न होकर पारलौकिक सुखको भूले रहते हैं ।।७-१४।।

उत्तम अज्ञानभूमिके ही पुण्यवान् अधिकारी आत्माके अतिरिक्त मेरी शक्तिका अस्तित्व मानकर स्वर्गीय सुखके अधिकारी हुआ करते हैं। अधम अज्ञानभूमि तमः प्रधान, मध्यम अज्ञानभूमि तम रजःप्रधान और उत्तम अज्ञानभूमि रजःसत्वप्रधान कही गयी हैं। इसके अनन्तर शुद्ध तत्त्वके क्रमविकाश स्थलरूपी पुण्यवान् मनुष्योंके चित्ताकाशमें देवदुर्लभ सप्तज्ञान भूमियोंके अधिकार क्रमशः स्वभावसे ही उदय होते हैं। ये सातों ज्ञानभूमियाँ साधकके अन्तःकरणमें क्रमशः शुद्ध सत्त्वकी निरन्तर भली-

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

आद्याया भूमिकायाश्चाऽनुभवः परिकीर्त्तितः ।
त्याज्यं त्यक्तं मयेत्येवं द्वितीयोऽनुभवो मतः ॥२२॥
प्राप्याशक्तिर्मया लब्धाऽनुभवो हि तृतीयकः ।
मायाविलसितं चैतद्दृश्यते सर्वमेव हि ॥२३॥
न तत्र मेऽभिलाषोऽस्ति चतुर्थोऽनुभवो मतः ।
जगद् ब्रह्मेत्यनुभवः पञ्चमः परिकीर्त्तितः ॥२४॥
ब्रह्मैवेदं जगत् षष्ठोऽनुभवः किल कथ्यते ।
अद्वितीयं निर्विकारं सच्चिदानन्दरूपकम् ॥२५॥
ब्रह्माऽहमस्मीति मतिः सप्तमोऽनुभवो मतः ।
इमां भूमिं प्रपद्यैव ब्रह्मसारूप्यमाप्यति ॥२६॥
श्रवणं मननं चैव निदिध्यासनमेव च ।
पुरुषार्थास्त्रिधा प्रोक्ता एत एव महर्षिभिः ॥२७॥
पुरुषार्थैरूपेतानामेतैः साधनशैलयः ।
सप्तानां ज्ञानभूमीनां सप्त सोपानसन्निभाः ॥२८॥

भाँति वृद्धि करती हुई नित्य और गुणातीत कैवल्य पदमें निश्चय ही पहुँचा देती हैं । मुझे जो कुछ जानने-योग्य था, सो सब कुछ जान लिया है, ऐसी बुद्धि होना प्रथम ज्ञानभूमिका अनुभव कहा गया है। मुझे त्यागना था, सो त्याग दिया है, यह दूसरी ज्ञानभूमिका अनुभव माना गया है ॥१५-२२॥

मुझे जो शक्ति प्राप्त करनी थी, सो प्राप्त करनी है, यह तीसरी ज्ञानभूमिका अनुभव है। यह सब ही मायाकी लीला मुझे दिखायी देती है, मैं इसमें मोहित नहीं होता, यह चतुर्थ ज्ञानभूमिका अनुभव है। "जगत् ही ब्रह्म है" यह पञ्चम ज्ञानभूमिका अनुभव कहा गया है। "ब्रह्म ही जगत् है" निश्चय ही यह षष्ठ ज्ञानभूमिका अनुभव कहा गया है और मैं अद्वितीय निर्विकार सच्चिदानन्दमयब्रह्म हूँ, ऐसी बुद्धि सप्तम ज्ञानभूमिका अनुभव माना गया है। इस भूमिको प्राप्त करके ही साधक ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। श्रवण मनन, और निदिध्यासनरूप, ये ही त्रिविध पुरुषार्थ कहे गये हैं। इन्हीं त्रिविध पुरुषार्थोंसे युक्त सातों ज्ञानभूमियोंकी साधन शैलियां सात सोपान रूप हैं॥२३-२८॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

प्रासादपृष्ठमारोढुं यथा सोपानपङ्क्तयः।
तथा तटस्थज्ञानस्य सप्तैता ज्ञानभूमयः ॥२९॥
सप्त सोपानतुल्याः स्युः स्वरूपज्ञानलब्धये।
आद्यायां ज्ञानदानाम्न्यां ज्ञानभूम्यां मुमुक्षवः ॥३०॥
अन्तर्दृष्टिं लभेरँस्ते तत्त्वजिज्ञासवः शनैः।
तदा जिज्ञासवो नूनं परमाणुस्वरूपतः ॥३१॥
स्थूलानि खलु तत्त्वानि ज्ञात्वा नित्यानि सर्वथा।
षोडशधा विभक्तानि दृष्ट्वा तानि पुनः पुनः ॥३२॥
वादसाहाय्यतो वाऽपि पर्य्यालोचनलोचनैः।
सृष्टिं निरीक्ष्य तस्याश्च कर्त्तारं परमेश्वरम् ॥३३॥
शक्नुवन्ति शनैर्धीरा अनुमातुं कुलालवत्।
अस्याञ्च ज्ञानभूमौ हि क्षेत्रे तत्त्वज्ञमानसे ॥३४॥
आत्मज्ञानीयबीजस्य प्ररोहो जायते ध्रुवम्।
एनां वदन्त्यतो भूमिं ज्ञानदां ज्ञानिनो जनाः ॥३५॥
ददात्येषा यतो भूमिर्ज्ञानं नित्यं मुमुक्षवे।
आरूढानां ज्ञानभूमावेतस्यां नियमेन च ॥३६॥

जिसप्रकार किसी राजभवनकी छतपर चढ़नेकेलिये सीढ़ियां होती हैं, उसीप्रकार स्वरूप ज्ञानमें पहुँचनेकेलिये तटस्थ ज्ञानकी ये सात ज्ञानभूमियाँ सात सीढ़ियोंके समान हैं। ज्ञानभूमिमें वे मुमुक्षु अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने लगते हैं। उस समय जिज्ञासु पण्डितगण स्थूल अवयवोंको ही परमाणुरूपसे सर्वथा नित्य जानकर और उन्हीं स्थूल अवयव रूप विभागोंको षोडश संख्या विभक्त देखकर ही वादकी सहायतासे अथवा पर्यालोचन दृष्टिकेद्वारा सृष्टिकोदेखकर और परमात्माको कुलालके समान केवल उस सृष्टिके कर्त्तारूपसे ही अनुमान करनेमें समर्थ होते हैं। इसी प्रथम ज्ञानभूमिमें तत्त्वज्ञानीके हृदयरूपक्षेत्रमें आत्मज्ञानरूप बीजका अङ्कुर निश्चय ही उत्पन्न हो जाता है, इसकारण ज्ञानीलोग इस ज्ञानभूमिको ज्ञानदा कहते हैं ॥२९-३५॥

क्योंकि यह ज्ञानभूमि मुमुक्षुको नित्य ज्ञान प्रदान करती है, इस ज्ञानभूमिमें पहुंचे हुए और किसी न किसी प्रकारसे परमात्माकी उपा-

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

आत्मोपास्तौ प्रवृत्तानां येन केन प्रकारतः ।
मुमुक्षूणां ध्रुवं चित्ते ज्ञानवायुप्रकम्पितम् ॥३७॥
मूलमज्ञानवृक्षस्य सर्वथा शिथिलायने ।
सन्न्यासदाभिधायां हि ज्ञानभूम्यां प्रतिष्ठिताः ॥३८॥
मुमुक्षवः शरीरं वै स्थूलमल्पसमीपतः ।
सम्पश्यन्तस्तथाऽङ्गेषु स्थूलेष्वेव महर्षयः ॥३९॥
कुर्वन्तः सूक्ष्मशक्तीनामनुभूतिं निरन्तरम् ।
धर्माधर्मौ च निर्णीय ह्यधर्म्मं त्यक्तुमीशते ॥४०॥
ज्ञानभूमिर्द्वितीयाऽत एषा सन्न्यासदोच्यते ।
योगदायां तृतीयायां ज्ञानभूम्यां मुमुक्षवः ॥४१॥
चित्तवृत्तिनिरोधस्य कुर्वन्तोभ्यासमुत्तमम् ।
शक्तिमेतां संयमेन प्राप्नुयुस्तत्त्ववित्तमाः ॥४२॥
अभ्यासे नैकतत्त्वस्य पृथक्त्वेन निरीक्षितुम् ।
यस्मिन् काले प्रवर्त्तन्ते सूक्ष्मदृष्टिस्वरूपकम् ॥४३॥
साधकेषु तदोहेति प्रत्यक्षं नन्वलौकिकम् ।
ज्ञानभूमिमिमां विज्ञा योगदाञ्च वदन्त्यतः ॥४४॥
चित्तवृत्तिनिरोधं यद् योगमेषा ददात्यलम् ।
लीलोन्मुक्तिं चतुर्थी वै ज्ञानभूमिं प्रपद्य च ॥४५॥

सनामें नियमपूर्वक लगे हुए मुमुक्षुओंके चित्तमें ज्ञानवायुसे भलीभाँति कँपाया हुआ अज्ञानवृक्षका मूल सर्वथा शिथिल हो जाता है। सन्न्यासदा नाम्नी द्वितीय ज्ञानभूमिमें स्थित मुमुक्षु स्थूल शरीरको कुछ निकटसे देखते हुए, स्थूल अवयवोंमें ही सूक्ष्म शक्तियोंका निरन्तर अनुभव करते हुए और धर्माधर्मका निर्णय करके अधर्मके त्याग करनेकी योग्यता प्राप्त कर ही लेते हैं ॥३६-४०॥

इसीकारण इस दूसरी ज्ञानभूमिका नाम सन्न्यासदा है। योगदा नाम्नी तीसरी ज्ञानभूमिमें मुमुक्षु चित्तवृत्ति निरोध करनेका उत्तम अभ्यासद्वारा आत्माको अलग-अलगरूपसे देखनेमें जब प्रवृत्त होते हैं, उस समय साधकोंमें सूक्ष्म दृष्टिरूपी अलौकिक प्रत्यक्ष उदय होता है,

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

अघट्यघटनायां हि पटीयस्या मुमुक्षवः ।
त्रैगुण्यलीलामय्या वै रहस्यं प्रकृतेर्विदुः ॥४६॥
तदालीलामयी स्वस्यां लीलायां प्रकृतिः पुनः ।
नाऽऽसज्जयितुमीष्टे तान् साधकान् तत्त्ववित्तमान् ॥४७॥
लीलोन्मुक्तिं बुधा प्रोचुर्ज्ञानभूमिमिमामतः ।
पञ्चमीं ज्ञानभूमिं ते यदा सम्प्राप्य सत्पदाम् ॥४८॥
अभेदज्ञानमाप्तुं वै चित्ते स्वस्मिन् मुमुक्षवः ।
आलभन्ते तदा तेषामनुभूतेर्हि शक्तयः ॥४९॥
विशेषेण विवर्द्धन्ते नाऽत्र कार्य्या विचारणा ।
अस्त्येकत्वादभेदो यस्तत्तत्प्रकृतिगोचरः ॥५०॥
यो वा भेदोऽस्ति नूनं हि कार्यकारणरूपयोः ।
तं वैज्ञानिकन्मेत्रेण विस्पष्टं ज्ञातुमीशते ॥५१॥
ज्ञात्वा सम्यग् रहस्यञ्च विश्वोत्पादककर्म्मणः ।
जगदेवाऽस्म्यहमिति संनिरीक्ष्य विचारतः ॥५२॥

इसीकारण विज्ञलोग इस ज्ञानभूमिको योगदा कहते हैं। क्योंकि यह चित्तवृत्ति निरोधरूपी योगको भलीभाँति प्रदान करती है। लीलोन्मुक्ति नाम्नी चतुर्थी ज्ञानभूमिमें पचहुँकर ही परमात्माकी लीलामयी अघटन-घटना पटीयसी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके तत्त्वको मुमुक्षु निश्चय ही पहचान लेते हैं। उस समय लीलामयी प्रकृति अपनी लीलामें उन साधकोंको पुनः नहीं फँसा सकती ॥४१-४७॥

इसकारण दस ज्ञानभूतिको बुधगण लीलोन्मुक्ति कहते हैं। सत्पदा नाम्नी पञ्चमी ज्ञानभूमिमें पहुँचकर वे मुमुक्षु जब अपने ही अन्तःकरणमें अभेदज्ञानको प्राप्त करने लगते हैं। उसी समय उनकी अनुभव शक्तियाँ विशेष बढ़ने लगती हैं। एकत्वके कारण पुरुष और प्रकृतिमें जो अभेद है अथवा कारण .स्वरूप और कार्यस्वरूपमें जो अभेद हैं, वैज्ञानिक-दृष्टिके-द्वारा उसको वे स्पष्टरूपसे समझनेमें समर्थ होते हैं और जगदुत्पत्ति कारक कर्मका रहस्य अच्छी तरह समझाकर "जगत् ही ब्रह्म है" इस विचारसे

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

कार्यब्रह्मण एतस्य विबुध्यन्तेस्म सत्यताम् ।
एनां वदन्ति विद्वांसो भूमिं वै सत्पदा यतः ॥५३॥
सद्भावस्य यतोऽमुष्या ज्ञानं लोकैरवाप्यते ।
नन्वानन्दपदां षष्ठीं ज्ञानभूमिं प्रपद्य वै ॥५४॥
एकाधारे परेशे हि ज्ञानवन्तो मुमुक्षवः ।
कर्मराज्यं जडं तत्र दैवराज्यञ्च चेतनम् ॥५५॥
शक्नुवन्ति यदा द्रष्टुं तदैते रससागरे ।
उन्मज्जन्तो निमज्जन्तो जगदित्यहमेव तत् ॥५६॥
समीक्षमाणा अद्वैतमानन्दमुपभुञ्जते ।
बुधा सम्प्रोचुरानन्दपदां भूमिमिमामतः ॥५७॥
आनन्दः साधकैर्यस्मादस्यां भूमाववाप्यते ।
अन्तिमां ज्ञानभूमिन्तु सप्तमीञ्च परात्पराम् ॥५८॥
सम्प्राप्य ज्ञानिनो भक्ता कार्यकारणयोर्द्विजाः ।
भेददृष्टिलयं कृत्वा स्वरूपे यान्ति संलयम् ॥५९॥
भेदज्ञानलयेनैव तेषां शुद्धान्तरात्मनि ।
सर्वेषु प्राणिवृन्देषु किलैकत्वप्रदर्शकम् ॥६०॥

आत्माको देखकर, इस कार्यब्रह्मकी सत्यता जान लेते हैं। इसी कारण इस ज्ञानभूमिको विद्वान् लोग सत्पदा कहते हैं ॥४८-५३॥

क्योंकि उसकेद्वारा सद्भावका ज्ञान लोगोंको प्राप्त होता है। आनन्दपदा नाम्नी षष्ठी ज्ञानभूमिमें पहुँचकर ही भक्त मुमुक्षु परमात्मामें ही जडमय कर्मराज्य और चेतनमय दैवराज्यको एक धारामें जब देखनेमें समर्थ होते हैं, तब वे रससागरमें उन्मज्जन-निमज्जन करते हुए "ब्रह्म ही जगत् है" इस प्रकारसे परमात्माको देखकर अद्वैत आनन्दका उपभोग करते हैं। इसी कारण इस ज्ञानभूमिको बुधगण आनन्दपदा कहते हैं। क्योंकि इस भूमिमें साधक आनन्द प्राप्त करते हैं। परात्परा नाम्नी सप्तमी और अन्तिम ज्ञानभूमिमें ज्ञानी भक्त पहुँचकर कार्य-कारणकी भेददृष्टिका लय करके ब्रह्मस्वरूपमें लय हो जाते हैं, और भेदज्ञानके लय हो जानेसे ही उनके विशुद्ध अन्तःकरणमें सर्वभूतोंमें ऐक्य प्रदर्शक

२

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

अद्वैतभावजनकाऽविभक्तज्ञानमुत्तमम् ।
उदेति नाऽत्र संदेहोऽज्ञानध्वान्तापनोदकम् ॥६१॥
तदा भक्ते भगवति भेदः सम्यग् विनश्यति ।
लीयन्ते तत् च स्वरूपे ते स्वरूपे ज्ञानसंश्रयात् ॥
अतो वदन्ति विद्वांस इमां भूमिं परात्पराम् ॥६२॥

प्रथमसाधनम्

यद्धर्म्मसाधनं व्यष्टया स यज्ञः परिकीर्तितः ।
महायज्ञः समष्टया हि धर्म्मसाधनमुच्यते ॥१॥
एताभ्यां साधनाभ्यां वै शुद्धिः स्यादाधिभौतिकी ।
आधिदैविकशुद्धिः स्याद्भक्त्या भगवतो दृढा ॥२॥
प्रजायतेऽध्यात्मशुद्धिरात्मानात्मविचारतः ।
सम्पादनीयास्त्रिविधाः शुद्धयो हि हितप्रदाः ॥३॥
ध्यानं हि मन्त्रहठयोर्लयस्य च यथाक्रमम् ।
स्थूलं ज्योतिर्मयं विन्दुध्यानमित्युच्यते बुधैः ॥४॥

अज्ञानान्धकारापनोदक और अद्वैतभाव उत्पादक अविभक्तज्ञानका उत्तम रीतिसे उदय होता है, इसमें सन्देह नहीं। उस समय ज्ञानी भक्तोंमें और ब्रह्ममें भेद-भाव नष्ट हो जाता है। वे ब्रह्मस्वरूपमें स्वरूप ज्ञानके अवलम्बनसे विलीन हो जाते हैं। इसी कारण इस भूमिको विद्वान् लोग परात्परा कहते हैं ॥५४-६२॥

प्रथम साधन

व्यष्टिधर्म साधनको यज्ञ और समष्टिधर्म साधनको महायज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञके साधनद्वारा आधिभौतिकशुद्धि प्राप्त करनी पड़ती है। भगवद्भक्तिलाभद्वारा, आधिदैविकशुद्धि और आत्मा-अनात्माके विचारद्वारा आध्यात्मिकशुद्धि प्राप्त करना होता है। त्रिविधशुद्धि सम्पादन परमावश्यक है। मन्त्रयोग, हठयोग और लययोगके ध्यानको यथाक्रम स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान और विन्दुध्यान कहते हैं। इन ध्यानोंको

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

महाभावमहाबोधमहालयस्वरूपिणः ।
समाधयो विनिर्दिष्टास्तेषां वै परमर्षिभिः ॥५॥
त्रयाणामेकमभ्यस्यं राजयोगमभीप्सुभिः ।
श्रेयसे हि भवेत्तस्याऽभ्यासो वै सप्तसाधने ॥६॥
ब्रह्ममन्त्रस्य प्रथमं साधनं मानसो जपः ।
अर्थानुगमनं कुर्य्याज्जपेनसह साधकः ॥७॥
भावो स्थिरत्वं लक्ष्यस्य विधेयं तेन वै समम् ।
यज्ञार्थं कर्म्म किमपि कर्मयोगोऽभिधीयते ॥८॥
कामे सङ्कल्परहितं कर्त्तव्यमिति यत्कृतम् ।
परार्थमथवा कर्म्म कर्म्मयोगोऽभिधीयते ॥९॥
शरीरकर्म्मयोगेषु प्रसक्तिर्हि द्वितीयके ।
तृतीये मानसे कर्म्मयोगे तत्परता भवेत् ॥१०॥
रसस्याऽनुभवो लोकेऽलिप्तेनाऽपि वितृष्णया ।
चतुर्थोऽनुभवो बोध्य आत्मलक्ष्यादविस्मृतिः ॥११॥
उपासनासप्तभूमिमनुसृत्य रतिर्यदा ।
सप्तध्याने भवेदेष पञ्चमोऽनुभवो मतः ॥१२॥

सिद्धियोंसे यथाक्रम महाभाव, महाबोध और महालयरूपी समाधियोंका उदय होता है। इन तीनों समाधियोंमेंसे किसीका अभ्यास करना होता है। राजयोगेच्छु व्यक्तिको निम्नलिखित सप्तसाधनोंका अभ्यास निरन्तर करना परम मङ्गलमय है। ब्रह्ममन्त्र जप मानसरूपसे करना प्रथम साधन है। ब्रह्ममन्त्रके जपके साथ ही साथ अर्थानुगम और अर्थानुगमसे भावपर लक्ष्य स्थिर करना होता है। कैसे ही कर्म हों यज्ञार्थ करनेसे कर्मयोग कहलाता है ॥१-८॥

कामसङ्कल्पवर्जित और कर्त्तव्यबोधसे जो कर्म किया जाय अथवा जो केवल परार्थकर्म किया जाय, इसको कर्मयोग कहते हैं। शारीरिक कर्मयोगमें रत रहना द्वितीय है। मानसिक कर्मयोगमें रहना तृतीय है। संसारमें रहते हुए विषयरागरहित रसानुभव करना और उस समय आत्मलक्ष्यविस्मृत न होना, यह चतुर्थ है। उपासनाकी सप्त भूमिकाके अनुसार सप्तध्यानमें रत रहना यह पञ्चम है। तटस्थज्ञानद्वारा आत्मा-

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठस्तटस्थज्ञानेनाऽनुसन्धानं हि चात्मनः ।
आत्मप्रकाशकज्ञानाऽनुसन्धानं हि सप्तमः ॥१३॥
एषु कुत्राऽपि सततं राजयोगपरैर्नरैः ।
अभ्यासः सुदृढं कार्य्यः इति प्रोचुर्महर्षयः ॥१४॥

वैराग्यवर्णनम्

योगाचार्यो महाप्राज्ञो वैराग्यस्य क्रमोन्नतौ ।
अवस्थाः स्युश्चतस्रो याः कथयामास ताः क्रमात् ॥१॥
यतमानाऽभिधा काचित् व्यतिरेकाभिधाऽपरा ।
एकेन्द्रियाऽभिधा काचित् वशीकाराभिधाऽपरा ॥२॥
सहायताया गुरुशास्त्रयोर्या ज्ञातुन्तथा सारमसारमस्याम् ।
कृतिर्जगत्यां महती भवेत्साऽवस्था सतोक्ता यतमानसंज्ञा ॥३॥
पूर्वं चेतसि यावन्तः स्थिता दोषा महात्मनाम् ।
कियन्तः सन्ति तेभ्योऽत्र कियन्तो यान्ति नष्टताम् ॥४॥
एवं विवेचने शक्तिर्यदा चेतसि वर्त्तते ।
अवस्था तादृशी सद्भिर्व्यतिरेकाऽभिधोच्यते ॥५॥

नुसन्धान यह षष्ठ है और स्वरूपज्ञान प्रकाशक विज्ञानका अनुसन्धान सप्तम है। राजयोगीको इन साधनोंमें से किसी न किसीमें निरन्तर युक्त रहना उचित है ॥९-१४॥

वैराग्यवर्णन

योगाचार्यने वैराग्यभूमिमें क्रमोन्नतिकी चार अवस्थायें बतायी है। यथा—यतमान संज्ञा, व्यतिरेक संज्ञा, एकेन्द्रिय संज्ञा और वशीकार संज्ञा, इस जगत्में सार क्या है और असार क्या है, गुरु और शास्त्रकी सहायतासे इसके जाननेकेलिये जो यत्न है, वही चित्तकी यतमान अवस्था है। चित्तमें जितने दोष पहले थे, उनमेंसे इतने नष्ट हो गये हैं और इतने बाकी हैं, इसप्रकारके विवेचनको व्यतिरेक अवस्था कहते हैं।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

विषये विषरूपेऽस्मिन् घोरे दुःखं महत् सताम् ।
एवं ज्ञानैरिन्द्रियाणामप्रवृत्तिः प्रजायते ॥६॥

तदाऽपि मानसे तृष्णा विषयस्य प्रजायते ।
कथ्यते तादृशी सद्भिरवस्थैकेन्द्रियाऽभिधा ॥७॥

अन्तेऽन्तःकरणा तृष्णा विषयाणां विनश्यति ।
तदानीं चेतसोऽवस्था वशीकाराभिधोच्यते ॥८॥

चतसृणामवस्थानामासां भेदानुसारतः ।
वैराग्यभेदाश्चत्वारः योगशास्त्रे सतां स्मृताः ॥९॥

आद्यं तु मृदुवैराग्यं द्वितीयं मध्यमुच्यते ।
तृतीयमधिमात्राख्यं चतुर्थं परसंज्ञकम् ॥१०॥

यदा विवेकवान् लोको लौकिकं पारलौकिकम् ।
दोषञ्चाऽनुभवेत्सर्वं विवेकयुक्तचेतसा ॥११॥

तदानीं मानसे वृत्तिर्वैराग्यप्रभवा सताम् ।
वराग्यतो भवेत्तत्तु मृदुवैराग्यमुच्यते ॥१२॥

लौकिके च यदा तस्मात् विषये पारलौकिके ।
विवेकभावं प्राप्तस्य साधकस्य च चेतसि ॥१३॥

विषमय विषयमें दुःखज्ञानद्वारा इन्द्रियोंकी अप्रवृत्ति होनेपर भी अन्तःकरणमें जो विषय तृष्णाकी स्थितिकी अवस्था है, उसे एकेन्द्रिय अवस्था कहते हैं और अन्तमें अन्तःकरणसे भी विषय तृष्णाका नाश होनेसे चित्तकी जो अवस्था होती है, उसे ही वशीकार अवस्था कहते हैं ॥१–८॥

इन चार अवस्थाओंकेअनुसार योगशास्त्रमें वैराग्यके भी चार भेद बताये गये हैं। यथा—मृदुवैराग्य, मध्यवैराग्य, अधिमात्र वैराग्य और पर वैराग्य। जब विवेकवान् व्यक्तिके विवेकयुक्त अन्तःकरणमें ऐहलौकिक और पारलौकिक विषयोंका दोष अनुभवमें आने लगता है, अन्तःकरणकी उस वैराग्य वृत्तिको मृदुवैराग्य कहते हैं। इसके अनन्तर जब विवेक भूमिमें अग्रसर साधकके अन्तःकरणमें ऐहलौकिक और पारलौकिक

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

विवेकतो विरक्तिः स्याद्दोषज्ञानादनेकशः ।
एषा विवेकिनोऽवस्था मध्यवैराग्यमुच्यते ॥१४॥
यदा दुःखं भवेत्तस्य विषयाणाञ्च सेवने ।
स्वतो विरक्तिरायाति विषये दुःखदायिनी ॥१५॥
एषोन्नततमाऽवस्था वैराग्याज्जायते यथा ।
तदधिमात्रवैराग्यं मुनिभिः परिकीर्त्यते ॥१६॥
स्थूलेन्द्रियैरनासक्तिर्दशायामत्र यद्यपि ।
किन्तु सूक्ष्मेन्द्रियाणान्तु संस्कारो नैव लिप्यते ॥१७॥
यदा हि योगयुक्तस्य साधकस्य महात्मनः ।
लौकिके विषये तद्वत्सवथा पारलौकिके ॥१८॥
अनासक्तिसमासक्तौ दुःखन्तु जायते महत् ।
स्थूलेन्द्रिया वितृष्णाः स्युः सर्वदा मोहवर्जिताः ॥१९॥
सूक्ष्मेन्द्रियाश्च संस्कारै रहिताः सर्वकर्मसु ।
तस्यैषा निर्मलाऽवस्था सहसा मोक्षदायिनी ॥२०॥
भवेद् वैराग्यतो यस्मात् सौभाग्याद्बहुजन्मनाम् ।
सर्वश्रेष्ठमिदं सद्भिः परवैराग्यमुच्यते ॥२१॥

विषयोंके प्रति अरुचि होने लगती है, विवेकी साधककी उस उन्नततर दशाका नाम मध्यवैराग्य है। वैराग्यकी तीसरी अवस्था वह कहलाती है कि, जब विषयभोगमें विवेकीको अत्यन्त दुःख प्रतीत होने लगे, दुःख-दायी पदार्थमें चित्तकी आसक्ति होना असम्भव है। अतः विषयोंका दुःखदायी भाव जब साधकके अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित हो जाता है, जिससे विषयका स्वतः ही त्याग हो जाता है, वैराग्यकी उस उन्नततर अवस्थाका नाम अधिमात्र वैराग्य है।।९–१६।।

इस दशामें स्थूल इन्द्रियोंकेद्वारा विषयोंमें अनासक्ति रहनेपर भी अन्तःकरणमें सूक्ष्म संस्कार रह जाता है और ऐहिक पारलौकिक विषयमें सर्वथा दुःख होता है तथा मोहसे रहित स्थूलेन्द्रियाँ तृष्णा शून्य हो जाती हैं और जब सब कर्मोंमें सूक्ष्मेन्द्रियाँ संस्कार शून्य हो जाती है, बहुजन्मके सौभाग्यसे मोक्ष देनेवाली अन्तःकरणकी उस सर्व श्रेष्ठ अवस्थाका नाम पर-

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

यतमानाऽभिधावस्था या प्रोक्ता चेतसःपुरा ।
तस्मादुत्पद्यते यत्तु मृदुवैराग्यमुच्यते ॥२२॥
व्यक्तिरेकाऽभिधाऽवस्था या प्रोक्ता मध्यसंज्ञकम् ।
वैराग्यं जायते तस्यास्तथाऽधिमात्रसंज्ञकम् ॥२३॥
वैराग्यं जायते तस्याः या चैकेन्द्रियसंज्ञकम् ।
वशीकाराऽभिधाऽवस्थाजातं वैराग्यमुच्यते ॥२४॥
यत्परं कथ्यते सद्भिः परमं मोक्षदायकम् ।
परब्रह्मस्वरूपोऽपि ज्ञायते यत्प्रसादतः ॥२५॥

भावसिद्धिविज्ञानवर्णनम्

बुद्ध्यहङ्कार संयोगाद्भावतत्त्वोदयो भवेत् ।
भावोऽपि द्विविधो ज्ञेयः शुद्धाशुद्धप्रभेदतः ।
भावोऽशुद्धस्ततो बुद्धिं विधत्ते विषयाकृतिम् ॥ १ ॥
शुद्धो भावः क्रमाच्चित्तं कुर्वाणो निर्मलन्तथा ।
बुद्धिम्ब्रह्मपदन्नूनं न यच्छान्तिम्प्रयच्छति ॥ २ ॥

वैराग्य है। पूर्व कथित अन्तःकरणकी चारभूमियोंके साथ इन चारप्रकारके वैराग्योंका समन्वय करनेसे यह सिद्धान्त होता है कि, यतमान अवस्थासे मृदुवैराग्य, व्यतिरेक अवस्थासे मध्यवैराग्य, एकेन्द्रिय अवस्थासे अधिमात्र वैराग्य और वशीकार अवस्थासे परवैराग्यका सम्वन्ध है। यही चतुर्धा विभक्त वैराग्यका लक्षण है ॥१७-२५॥

भावसिद्धि विज्ञान वर्णन

अहङ्कार और बुद्धिके संयोगसे भावतत्त्वका उदय होता है। शुद्ध और अशुद्ध भेदसे भाव भी द्विविध हैं। उनमेंसे अशुद्धभाव बुद्धिको विषय-वत् कर देता है और शुद्धभाव क्रमशः अन्तःकरणको मलरहित करता हुआ बुद्धिको ब्रह्मपदमें पहुँचाकर ही शान्ति प्रदान करता है। जीव या

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

नन्वासक्तेर्वशा जीवा अथवो भावनोदिताः ।
एतत्तत्त्वद्वयस्यैव साहाय्यात्कर्म कुर्वते ॥ ३ ॥
कायिकं वाचिकं चैव तथा मानसमेव च ।
आसक्तौ किन्तु वै वश्यं भावे स्वातन्त्र्यमस्ति ह ॥ ४ ॥
आनन्त्याद्विषयाणान्तु बहुशाखा समन्विता ।
आसक्तिर्विद्यते नूनं शुद्धो भावो न तादृशः ॥ ५ ॥
एकाद्वैतदशान्नेतुमीष्टेऽसौ नात्र संशयः ।
यतो ब्रह्मपदं सम्यग्विधत्तेऽद्वैतमेव हि ॥ ६ ॥
आसक्त्या कार्यकर्त्तारो जीवाः प्रारब्धयोगतः ।
श्रीगुरोर्देवतानां वा प्रसादादेव सर्वथा ॥ ७ ॥
पाशतुल्याद्धि विषयात्स्यान्निवर्त्तयितुं क्षमाः ।
अन्यथा विषये तेषां प्रसक्तिस्तत्र निश्चिता ॥ ८ ॥
किन्तु शुद्धस्य भावस्य साहाय्यात्कार्यकारिणः ।
भाग्यवन्तो न सज्जन्ते विषयेषु कदाचन ॥ ९ ॥
उत्तरोत्तरमेतेषां सर्वथोर्द्ध्वगतिर्भवेत् ।
संगृहीता हि संस्काराः पूर्वजन्मनि यादृशाः ॥१०॥

तो आसक्तिके वशीभूत हो या भाव प्रणोदित होकर ही, इन्हीं दो तत्त्वोंकी सहायतासे शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्म करते हैं। आसक्तिमें विवशता है, परन्तु भावमें स्वाधीनता है। आसक्ति बहुशाखा युक्त ही है, क्योंकि विषय अनन्त है, परन्तु शुद्धभाव वैसा नहीं है। वह एक अद्वैत-दशाको प्राप्त करा सकता है, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि ब्रह्मपद अद्वैतका ही विधायक है। आसक्तिसे काम करनेवाले जीव सर्वथा प्रारब्धकी सहायता, श्रीगुरुदेवकी कृपा या देवताओंकी कृपासे ही पाश तुल्य विषयसे अपनेको बचा सकते हैं। नहीं तो उसमें उनका फँसना निश्चित है, परन्तु शुद्ध भावकी सहायतासे कर्म करनेवाले भाग्यवान् विषयोंमें कदापि नहीं फँसते ॥१-९॥

उत्तरोत्तर उसकी सर्वथा ऊर्द्ध्वगति हुआ करती है। जीवने पूर्व जन्ममें जैसे संस्कार संग्रह किये हैं, उसीकेअनुसार उसमें आसक्ति प्रकट

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

आसक्तिस्तादृशी जीवे प्रादुरेष्यति निश्चितम् ।
तस्या एवानुसारेण जीववर्गे जनिष्यते ॥११॥
हेयोपादेयताज्ञानं नास्तिकोऽप्यत्र संशयः ।
आसक्तिमूलके चैवमसद्भावे प्रसज्य वै ॥१२॥
जीवो बन्धदशातः स्वं रक्षितुन्नैव शक्ष्यति ।
सम्बद्धेन मया सार्द्धं सद्भावे न तु संयुतः ॥१३॥
यत्कर्म कुरुते जीवः सततं भावशुद्धितः ।
हेतुतां वहते साध्वी मुक्तेस्तत्कर्म निश्चितम् ॥१४॥
प्रख्याता भगवच्छक्तिर्धर्मः सूक्ष्मातिसूक्ष्मका ।
नास्य स्थूलपदार्थेन सम्बन्धः स्थूल इष्यते ।
भावेन हि यदाऽधर्मे धर्मेण परिणम्यते ॥१५॥
अधर्मस्यापि धर्मे वै परिणामो यदा भवेत् ।
एष एव तदा धर्मः सूक्ष्मत्वपरिचायकः ॥१६॥
ऐशी शक्तिर्द्विधा भिन्ना विद्याऽविद्या प्रभेदतः ।
धर्माधर्मसुसम्बन्धस्ताभ्यां सार्द्धं हि विद्यते ॥१७॥

होगी और उसी आसक्तिके अनुसार जीवोंमें हेय और उपादेयका विचार उत्पन्न होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है और इस प्रकारसे आसक्तिमूलक असद्भावमें फँसकर ही जीव बन्धन दशासे अपनेको बचा नहीं सकेगा। परन्तु सद्भाव, जिसका सम्बन्ध साथ है, उसके साथ युक्त होकर निरन्तर भाव शुद्धिद्वारा जो कर्म जीव करता है, वह कर्म अवश्य ही मुक्तिका कारण होता है। इस कारण सद्भावसे युक्त पापकर्म भी पुण्य हो जाता है। धर्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म भगवत् शक्ति है। यह सब इन्द्रियोंसे जानने योग्य स्थूल पदार्थ नहीं है और न इसका स्थूल पदार्थसे स्थूल सम्बन्ध है। जीव भावसे ही धर्माधर्ममें और अधर्म-धर्ममें परिणत होता है, तो यही धर्मके सूक्ष्म स्वरूपका परिचायक है ॥१०-१६॥

ब्रह्मशक्तिके विद्या और अविद्या इन दो भेदोंके साथ ही धर्म और अधर्मका सम्बन्ध है। इसका धर्मज्ञ व्यक्ति ही सम्यक् अनुभव करते हैं।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

एतस्यानुभवं सम्यग् धर्मज्ञा एव कुर्वते ।
सम्बर्द्धयत आसक्तिर्नन्वसद्भावमूलिका ॥१८॥
अविद्यायाः सर्वदैव प्रभावो भूरिशो भवेत् ।
किन्तु तद्युक्तसद्भावात्मकं कर्म निरन्तरम् ॥१९॥
अलं वर्द्धयते विद्या प्रभावं जगतीतले ।
भावप्रभाव एतावान्महानस्ति समन्ततः ॥२०॥
बलाद् यस्य जड़ो याति चैतन्यं महदद्भुतम् ।
जड़ायामपि मूर्त्तौ वै चैतन्यं प्रकटायते ॥२१॥
असत्यमपि सत्यं स्यात्प्रोक्तं जीवहिताय वै ।
अधर्मो जायते धर्मः पशुहिंसा यथाऽध्वरे ॥२२॥
यात्येवं भावसम्बन्धाच्चैतन्यं जड़तामिह ।
सत्यं मिथ्या भवेद्धर्मो जायतेऽधर्मरूपभाक् ॥२३॥
भावशुद्धिसमायुक्तमसत्कर्माप्यतो ध्रुवम् ।
अपाद्धर्मो भजत्येव सद्धर्मत्वं न संशयः ॥२४॥

संसारमें असद्भाव मूलक आसक्ति सदा अविद्याके प्रभावको अत्यन्त ही बढ़ाती हैं, किन्तु आत्मासंयुक्त सद्भावात्मक कर्म निरन्तर जगत्में विद्याके प्रभावको ही वृद्धि करते हैं। भावका प्रभाव इतना महान् है कि, जिसके बलसे जड़ महाभूत चैतन्यको प्राप्त होता है। जिस कारणसे ही जड़मूर्त्तिमें चैतन्य प्रकट होता है। मिथ्या भी सत्य हो जाता है, जो कि जीवोंके हितकेलिये ही कहा गया हो। अधर्म धर्म हो जाता है, यथा यज्ञमें पशु हिंसा। इसप्रकार इस संसारमें भावके सम्बन्धसे चैतन्य जड़सत्य, असत्य और धर्म धर्म हो जाता है। इसी कारण भाव शुद्धियुक्त असत्कर्म भी आपद्धर्ममें निःसन्देह सद्धर्मरूपमें परिणत होकर ही जीवोंकेलिये सदा परम मङ्गल विधायक होता है ॥१७-२४॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

राजयोगधारणावर्णनम्

मुद्राभ्यासाद्धारणायाः सिद्धिस्तत्त्वावधारणे ।
प्राप्य सूक्ष्मां क्रियां कुर्वन्पञ्चतत्त्वजये क्षमः ॥ १ ॥
धारणासिद्धये पञ्च मुद्राः सूक्ष्मलयक्रियाः ।
साहाय्यं वै विदधते प्रोक्तमेतन्महर्षिभिः ॥ २ ॥
ततः क्षमेत त्रिविधब्रह्मध्यानस्य साधने ।
उन्नताम्भूमिमारुह्य योगिराट् स्थिरमानसः ॥ ३ ॥
अनिष्पन्नदशायां वै धारणाभ्यासतः सुधीः ।
ब्रह्मेश्वरविराड्रूपां धारणामेति साधकः ॥४॥
धारणा द्विविधा प्रोक्ता प्रकृतेर्ब्रह्मणस्तथा ।
जीवन्मुक्तगुरोः प्राप्या साधकैरिति निश्चयः ॥ ५ ॥
वेदशास्त्रगुरूणां हि साहाय्याद् ध्यानमाचरन् ।
ब्रह्मेश्वरविराड्रूपं ध्यातुं शक्नोति साधकः ॥ ६ ॥
मन्त्रे हठे लये योगे ध्यानमेकविधं स्मृतम् ।
ध्यानमन्यत्तु कुर्वाणो हानिमाप्नोति साधकः ॥ ७ ॥
राजयोगे तु त्रिविधं ध्यानमस्ति हितप्रदम् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं द्रष्टा दृश्यस्य चाप्यहम् ॥ ८ ॥

प्रथम पञ्चधारणा और मुद्राके अभ्यासद्वारा योगिराज क्षिति और तेज मरुत आकाश इन पाँचों तत्त्वोंकी धारणासे सिद्धिलाभ करता है और साथ ही पञ्चसूक्ष्मक्रियाके साधनद्वारा इन तत्त्वोंको जय करनेमें समर्थ होता है। राजयोगकी धारणाकी सिद्धिमें पञ्चधारणामुद्रा और पञ्चसूक्ष्मलयक्रिया परमसहायक है। तत्पश्चात् योगिराज उन्नत भूमिमें पहुँचकर त्रिविध ब्रह्मध्यानके साधनोंमें समर्थ होता है। अपरिपक्व दशामें धारणाभ्यासकी साहायतासे ही ब्रह्म, ईश्वर, विराट्रूपी त्रिविध धारणासे साधक अग्रसर होता है। धारणके वास्तवमें दो अङ्ग हैं। एक प्रकृतिधारणा और दूसरा ब्रह्मधारणा, ये दोनों धारणाके अङ्ग जीवन्मुक्त गुरुकेद्वारा साधकको प्राप्त हो सकते हैं। राजयोगी ध्यानाभ्यास करते समय वेदशास्त्र और गुरुकी सहायतासे ब्रह्म, ईश, विराट्रूपी त्रिविध

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माण्डन्निखिलश्चास्मि ध्याने भावोऽत्र जायते ।
जीवन्मुक्तगुरोर्लभ्यं शास्त्रतत्त्वं हि साधकैः ॥ ९ ॥
साधनानां रहस्यञ्च राजयोगस्य निश्चितम् ।
ध्यानसिद्ध्या निर्विकल्पः समाधिरधिगम्यते ॥१०॥
सिद्धये राजयोगस्य साधनानि बहूनि वै ।
विनिर्दिष्टानि तत्त्वज्ञैर्ऋषिभिः समदर्शिभिः ॥११॥

प्रस्थानत्रयम्

ब्रह्मेश्वरविराड्भावैर्व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।
अमी विलासास्तस्यैवाद्वैतस्य परमात्मनः ॥१२॥
तत्त्वातीतं पदं तद्धि मनोवाग्बुद्ध्यगोचरम् ।
भावत्रयानुसारेण राजयोगेऽपि सिद्ध्यति ॥१३॥
निसर्गतो हि त्रिविधं भावानां परिवर्त्तनम् ।
अतोऽत्र राजयोगेऽपि प्रस्थानत्रयकल्पनम् ॥१४॥

ध्यान करनेमें समर्थ होता है। राजयोग ध्यानकी यह विलक्षणता है कि, मन्त्रयोग, हठयोग और लययोगके साधकको केवल एक प्रकारका ही ध्यान करना होता है और उनको ध्यानान्तरसे हानि होती है, परन्तु राजयोगीकेलिये त्रिविधध्यान हितकर है। मैं ही सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ, मैं ही दृश्यका द्रष्टा हूँ। मैं ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हूँ इत्यादि भाव राजयोगके ध्यानमें होते हैं। जीवन्मुक्त गुरुदेवकी सहायतासे शास्त्रोंका रहस्य और राजयोग साधनोंका रहस्य साधकको प्राप्त होता है, इस ध्यानकी सिद्धिसे निर्विकल्प समाधिकी प्राप्ति होती है। राजयोगमें सिद्धिलाभ करनेकेलिये अनेक साधन क्रियायें योगतत्त्व वेत्ताओंने वर्णनकी है ॥१-११॥

प्रस्थानत्रय वर्णन

ब्रह्म, ईश, और विराड् भावसे परमात्मा सब जगह व्याप्त है। अद्वैतपदके ही, ये तीनों विलास हैं। तत्त्वातीत पद मन बुद्धिसे अगोचर है। परन्तु इन त्रिविधभावोंके अनुसार राजयोगीमें भी त्रिविध परिवर्त्तन होना स्वभाव सिद्ध है। इसीकारण राजयोगमें प्रस्थानत्रयका विधान है।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

द्वैतभावाननुभवो राजयोगे प्रजायते ।
तथापि सच्चिदानन्दभावस्यानुभवो भवेत् ॥१५॥
ज्ञानं कर्मोपासनां च विलसन्ति यथाक्रमम् ।
सद्भावस्थितिरेकत्र परमानन्दसंस्थितिः ।
चिद्भावस्य विलासश्च जायतेऽन्यत्र निश्चितम् ॥१६॥
सच्चिदानन्दभावस्याद्वैतत्त्वेऽपि हि जायते ।
भावप्राधान्यतस्तत्र प्रस्थानत्रयकल्पना ॥१७॥

समाधि वर्णनम्

यमश्च नियमश्चैवासनश्चापि तथा पुनः ।
प्राणायामस्तथा प्रत्याहारो धारणमेव च ॥ १ ॥
ध्यानं समाधिरित्यष्टौ योगाङ्गानि भवन्ति वै ।
इमान्यङ्गानि सोपानभूतानीति विदुर्बुधाः ॥ २ ॥
राजयोगे समाप्यन्ते सर्वाण्येतानि निश्चितम् ।
साधनं राजयोगस्य धारणाध्यानभूमितः ॥ ३ ॥

यद्यपि राजयोगीमें द्वैतभाव नहीं रहता, परन्तु सूक्ष्मरूपसे सच्चिदानन्द भावका रसास्वादन बना रहता है। कर्म, उपासना और ज्ञानके त्रिविध विलासके अनुसार एकमें सत्सत्ताका विलास, एकमें आनन्दसत्ताका विलास और एकमें चित्सत्ताका विलास रहता है। सच्चिदानन्द भावके अद्वैत रूपसे स्थित रहनेपर भी भाव प्राधान्यसे प्रस्थानत्रय कल्पनाकी आवश्यकता है ॥१२-१७॥

समाधि वर्णन

यम, नियम, आसन, प्राणयाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि ये अष्ट योगाङ्ग सोपान रूप हैं। आठों अङ्गका चरम लक्ष्य एक ही है। आठोंकी परिसमाप्ति राजयोग है। वस्तुतः राजयोगका साधन प्रथमावस्थामें धारण और ध्यानभूमिसे प्रारम्भ होता है। और राजयोगकी साधन भूमि

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

आरभ्यते समाधिर्हि साधनन्तस्य मुख्यतः ।
समाधिभूमौ प्रथमं वितर्कः किल जायते ॥ ४ ॥
ततो विचार आनन्दानुगत तत्परा मता ।
अस्मितानुगता नाम ततोऽवस्था प्रजायते ॥ ५ ॥
विशेषलिङ्गत्वविशेष्यलिङ्गं लिङ्गं तथाऽलिङ्गमिति प्रभेदान् ।
वदन्ति दृश्यस्य समाधिभूमिविवेचनाया पटवो मुनीन्द्राः॥६॥
हेया अलिङ्गपर्यन्ता ब्रह्माहमिति या मतिः ।
निर्विकल्पे समाधौ हि न सा तिष्ठति निश्चितम् ॥ ७ ॥
द्वैतभावास्तु निखिला विकल्पाश्च तथा पुनः ।
क्षीयन्ते यत्र सा ज्ञेया तुरीयेति दशा बुधैः ॥ ८ ॥
समाधिसाधनं शास्त्राभ्यासतो नहि लभ्यते ।
गुरोर्विज्ञाततत्त्वात्तु प्राप्तुं शक्यमिति ध्रुवम् ॥ ९ ॥
समाधिभेदाश्चत्वारो राजयोगाङ्गसाधने ।
निर्दिश्यन्ते तत्त्वविद्भी राजयोगविशारदैः ॥१०॥
निर्बीजौ द्वौ सबीजौ द्वाविति भेदा भवन्ति ते ।
उपदेशेन लभ्यन्ते जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ॥११॥

प्रधानतः समाधिभूमि ही है। समाधि-भूमिमें पहले वितर्क रहता है। तदनन्तर अग्रसर होनेपर विचार रहता है। उससे आगेकी अवस्थाका नाम आनन्दानुगत अवस्था है और उससे आगेकी अवस्थाका नाम अस्मितानुगत अवस्था है। प्रथम दो भेद सविकल्प और द्वितीय दो भेद निर्विकल्प समाधि है। विशेषलिङ्ग, विशेष्यलिङ्ग, लिङ्ग और अलिङ्ग, यह चार दृश्यकेभेद हैं। अलिङ्ग, तक त्यागने योग्य है। मैं ब्रह्म हूँ, यह भाव भी निर्विकल्प समाधिमें नहीं रहता। कोई द्वैतभाव अथवा कोई विकल्प जब शेष न रहे, वही तुरीया अवस्था है। समाधि भूमिका साधनक्रम शास्त्रसे ज्ञात नहीं हो सकता, जिनको अपरोक्षानुभूति हुई है, ऐसे जीवन्मुक्त ही उसके साधनके भेद बता सकते हैं ।।१-९।।

राजयोग साधन अङ्गमें चार प्रकारकी समाधिका भेद वर्णन तत्त्ववेत्ता योगिराजोंने किया है। वे दोनों सबीज समाधि और दो निर्बीज समाधि कहलाती हैं। जीवन्मुक्त महात्माओंसे उसका उपदेश प्राप्त हो सकता है।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

समाधिलक्ष्यवर्णनम्

मन्त्रो हठो लयो राजो योगोऽयं सममुक्तिदः ।
राजत्त्वात्सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः ॥१२॥
नादबिन्दुसहस्राणि जीवकोटिशतानि च ।
अहम्ममेति धीर्नूनं मोक्षहेतुर्महात्मनाम् ॥१३॥
दृश्यन्ते दृशि रूपाणि गगनं भाति निर्मलम् ।
अहमित्यक्षरं ब्रह्म परमं विष्णुमव्ययम् ॥१४॥
अहमेकमिदं सर्वमिति पश्येत्परं सुखम् ।
दृश्यते तत्खगाकारं खगाकारं विचिन्तयेत् ॥१५॥
सकलं निष्फलं सूक्ष्मं मोक्षद्वारविनिर्गतम् ।
अपवर्गस्य कर्त्तारं परमं विष्णुमव्ययम् ॥१६॥

समाधिलक्ष्य वर्णन

मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग यह चार योग अपने अपने क्रमके अनुसार मुक्ति प्रदानकारी साधन हैं, परन्तु राजयोग इन चारोंमें सर्वश्रेष्ठ है, इस कारण इस योगकी "राजयोग" संज्ञा की गयी। नाद बिन्दु सहस्र और कोटि शत जीव सब ही भस्मीभूत होकर निरञ्जन ब्रह्ममें लयको प्राप्त करते हैं। इस कारण "मैं ही ब्रह्म हूँ" इस प्रकारका ज्ञान ही महात्मागणोंके अर्थ एक मात्र मोक्षका कारण है। निर्मल गगन जिस प्रकार परिष्कृत रूपसे दृष्टिगोचर हुआ करता है और उसमें गगनस्थ रूपआदि जिस प्रकारसे परिष्कृत दिखायी देते हैं, उसीप्रकार "मैं ही अक्षर ब्रह्म हूँ" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होनेसे अव्यय विष्णुरूपी परमात्माके दर्शन हो सकते हैं। एकमात्र "मैं ही यह अखिल विश्व हूँ" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होते ही परमानन्दरूपी परमात्माका प्रत्यक्ष होता है और जब अपने आपको साधक गगनकी नाईं अण्ड विचार कर सकता है, तब ही वे परमात्मा गगनवत् अण्ड उसको प्रतीत होने लगते हैं। परमात्मा सकल, निष्कल सूक्ष्मातिसूक्ष्म, मुक्तिपथ विनिर्गत, मुक्तिके हेतु और अव्यय परम विष्णु स्वरूप हैं। ॥१०-१६॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

सर्वात्मा ज्योतिराकारं सर्वभूताधिवासितम् ।
सर्वत्र परमात्मानं ब्रह्मात्मानं तथा परम् ॥१७॥
अहं ब्रह्मेति यः सर्वं विजानाति नरः सदा ।
हन्यात्स्वयमिमान् कामान् सर्वाशी सर्वविक्रमी ॥१८॥
राजन्तं दीप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम् ।
प्रापयेद् देहिनां यस्तु राजयोगः स कीर्त्तितः ॥१९॥

समाध्यङ्गानि

मनोमूर्च्छां समासाद्य मन आत्मनि योजयेत् ।
परात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात् ॥२०॥
स समाधिस्त्रिधा प्रोक्तो मन्त्रो हठलयैस्तथा ।
इति ते कथिता भेदा समाधिं मुक्तिलक्षणम् ॥२१॥
क्रियायोगसमाधिः स्यादेकात्मन्येव साधनम् ।
उन्मनी सहजावस्था सर्वे चैकात्मवाचकाः ॥२२॥

वे सर्वात्मरूपी, ज्योतिःस्स्वरूप, सर्वभूतका आश्रयरूप, सर्वव्यापक, चेतनाधार आत्मा और परमात्मामय ब्रह्म हैं। जो साधक निरन्तर " मैं ही यह समस्त विश्व और ब्रह्म हूँ" ऐसा विचार किया करते हैं, वे सर्वभुक् और सर्व विजयी होकर स्वयं अखिल कामनाओंका नाश कर दिया करते हैं। स्वयं प्रकाशवान् और अविनाशी परमात्माकी प्राप्ति इस योगद्वारा साधकको हुआ करती है। इस कारण इसे राजयोग कहते हैं।

समाधिके अङ्ग

प्रथम मनोमूर्च्छाका साधन करके मनको परमात्माके सहित एकीभूत करनेसे परमात्मा संयोगरूप समाधिका उदय हुआ करता है। यह समाधि तीन भागमें विभक्त है। यथा-मन्त्रसमाधि, हठसमाधि और लयसमाधि, यह मुक्ति लक्षणरूपी है। यह तीनों क्रिया योगकी समाधि एक मात्र आत्म-साधनके उपायरूप हैं। उन्मनी और सहजावस्था इस आत्मरूपी समाधि अवस्थाके वाचक हैं। (यहाँ समाधि शब्दसे सविकल्प समाधिका तात्पर्य है। एवं राजयोगकी प्राप्ति ही निर्विकल्प समाधिका रूप है) ॥१७-२२॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

स्वकीये हृदये ध्यायेदिष्टदेवस्वरूपकम् ।
चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम् ॥२३॥

आनन्दाश्रुपुलकेन महाभावः प्रजायते ।
समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्च मनोन्मनी ॥२४॥

हठयोग-समाधि-लक्षणम्

साधनात् खेचरी मुद्रा रसनोद्र्ध्वगता सदा ।
तदा समाधिसिद्धिः स्याद्धित्वा साधारणक्रियाम् ॥२५॥

अनित्यं मन्दवेगेन भ्रामरी कुम्भकं चरेत् ।
मन्दं मन्दं रेचयेद्वायुं भृङ्गनादं ततो भवेत् ॥२६॥

अन्तःस्थं भ्रामरी नादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत् ।
समाधिर्जायते यत्र आनन्दः सोऽहमित्यतः ॥२७॥

मन्त्रयोग-समाधि लक्षण

विशुद्ध भक्ति और परम आह्लादकेसाथ अपने हृदयमें अपने इष्टदेवके स्वरूपको ध्यान करते हुए जब आनन्द अश्रु बहने लगें, रोमांच होने लगें और महाभावदशाका उदय हो जाय, तभी उस अवस्थाको मनोन्मनी भी कहते हैं ।

हठयोग-समाधि लक्षण

खेचरी मुद्राकी सिद्धिसे जब रसना ऊर्ध्वगत हो जाय, तो उस अवस्थामें जो समाधि अवस्थाकी प्राप्ति होती है, वही हठयोगकी साधारण समाधि है और दूसरे कौशलका वर्णन यह है कि, भ्रामरी नामक कुम्भकके साधनके अनन्तर शनैः शनैः वायु रेचन करते समय शरीरान्तर्गत भृङ्ग-नादके समान सुनायी पड़ता है, जब शरीर अन्तर्गत इस प्रकारकी ध्वनि सुनायी देने लगे, तब उस शब्दमें मनको लय करनेसे "मैं ही ब्रह्म हूँ" ऐसा ज्ञान उत्पन्न होने लगता है, इसी अवस्थाका नाम हठयोग समाधि है ।

३

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

लययोग-समाधि-लक्षणम्

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत् ।
स शृङ्गाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥२८॥
आनन्दमयः संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि सम्भवेत् ।
अहं ब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेन जायते ॥२९॥

राजयोगावश्यकतावर्णनम्

आलोच्य चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
योऽहं ब्रह्म न जानाति दर्व्वी पाकरसं यथा ॥ १ ॥
अनन्तं कर्म शौचं च तपो यज्ञस्तथैव च ।
तीर्थयात्रादिशमनं यावत्तत्र न विन्दति ॥ २ ॥
स्वयमुच्चलिते देहे अहं ब्रह्मात्र संशयी ।
चतुर्वेदधरो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति ॥ ३ ॥

लययोग-समाधि लक्षण

योनिमुद्राकी सिद्धिद्वारा जब साधक अपने आपको शक्तिमय समझने लगता है, तब परमात्माकेसाथ वह शृङ्गार आनन्दको प्राप्त हो जाता है। इस आनन्दमय आत्मभावमें "मैं ही ब्रह्म हूँ" "मैं ही अद्वितीय हूँ" ऐसा भाव होने लगता है, इसी अवस्थाको लययोग समाधि कहते हैं॥ २३-९९॥

राजयोगावश्यकता वर्णन

निरन्तर चतुर्वेद और सब शास्त्र समूहोंकी आलोचना करते हुए जिस साधकको 'मैं ब्रह्म हूँ' इसप्रकारका ज्ञान प्राप्त न हो, तो दर्वीको जिसप्रकार पाक रसका स्वाद नहीं बोध होता है, उसीप्रकार वह साधक आत्मानन्द रस लाभ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। अनन्तकर्म समूह, शौच, तप, यज्ञ तीर्थादि यात्रा विषयोंकी आवश्यकता तबतक रहती है, जबतक आत्मतत्त्वका उदय न हो सके। इस स्वयंम् उच्चलित शरीरमें 'मैं ब्रह्म हूँ अथवा नहीं हूँ' ऐसा संशयात्मक ज्ञान जिस साधकमें रहे, वह चतुर्वेदपाठी विप्र होनेपर भी सूक्ष्मब्रह्मके जाननेमें समर्थ नहीं हो सकता।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

गवामनेकवर्णानां क्षीरं स्यादेकवर्णतः ।
क्षीरवद्दृश्यते ज्ञानं देवानां च गवां यथा ॥ ४ ॥
इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं यत्सर्वं ज्ञातुमिच्छसि ।
अपि वर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥ ५ ॥
अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ ६ ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन देहे पश्यन्ति मानवाः ।
देहे नष्टे कुतो बुद्धिर्बुद्धिनाशे कुतोऽज्ञता ॥ ७ ॥
तावदेव निरोधः स्यात् यावत्तत्त्वं न विन्दति ।
विज्ञाते च परे तत्त्वे एकमेवाऽनुपश्यति ॥ ८ ॥
नवच्छिद्रान्विता देहाः श्रवते जालिका इव ।
नैव ब्रह्म न शुद्धं स्यात् पुमान् ब्रह्म न विन्दति ॥ ९ ॥

गौ नाना वर्णको होनेपर भी उसका जिसप्रकार एकही वर्णका पय हुआ करता है, उसीप्रकार जीव देह नाना रूपधारी होनेपर भी उनमें दुग्धवत् आत्मा एक रूप ही है । यह ज्ञान है और यह ज्ञेय है, इसप्रकारसे यदि सब ज्ञेय वस्तुके जाननेकी इच्छा की जाय, तो सहस्रों वर्षकी आयु होनेपर भी साधक कदापि शास्त्र समुद्रका पार नहीं कर सकता । अग्नि द्विजातिगणोंके देवता हैं, हृदयस्थ आत्मा मुनिगणोंके देवता हैं, प्रतिमा स्वल्प बुद्धि जीवगणोंके देवता हैं, परन्तु समदर्शीगणोंके परम ब्रह्म सर्वव्यापी हैं। साधकगण इन्द्रिय समूहोंको निरोध करके देह अन्तर्गत ही आत्मारूपी ब्रह्मके दर्शन किया करते हैं, तदनन्तर देहाध्यासके नाश होते ही विषयात्मक बुद्धिका नाश हो जाता है, एवं तब अज्ञानता भी नहीं रहती ॥१–७॥

परन्तु जबतक तत्त्वज्ञान उत्पन्न न हो, तबतक इन्द्रिय निरोधकी आवश्यकता है, किन्तु वह परमतत्त्व उदय होनेपर एकमात्र चिदानन्दमय परब्रह्म ही अनुभव हुआ करते हैं। नवछिद्रमय देहसे सदा ज्ञान विज्ञान आदिका क्षय हो रहा है, इसकारण देहाभिमान रहित होकर जबतक साधक अन्तःकरणको निर्मल नहीं कर सकता, तबतक परम कल्याणरूपी ब्रह्म साक्षात्कारकी सम्भावना नहीं । आत्म प्रसादका उदय होनेपर त्रितापका नाश हो जाता है, फलतः आत्मानन्द प्राप्त पुरुषकी बुद्धि ही प्रतिष्ठाको प्राप्त हो जाती है । ब्रह्ममें अयुक्त पुरुषकी बुद्धि स्थिर नहीं

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥१०॥
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ? ॥११॥

राजयोगक्रम वर्णनम्

जले संलीयते पृथ्वी जलमग्नौ विलीयते ।
अग्निर्वायौ लयं याति खे वायुश्च प्रलीयते ॥ १ ॥
एवं स्थूलेषु भूतेषु लयं यातेषु वै मिथः ।
मनो बुद्धावहङ्कारे बुद्धिश्चित्तेत्वहङ्कृतिः ॥ २ ॥
क्षेत्रज्ञे विलयं याति चित्तक्षेत्रज्ञ आत्मनि ।
सर्वं तरति पाप्मानं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥ ३ ॥
घटसंवृतमाकाशं लीयमानं यथा घटे ।
घटे नष्टे महाकाशे तद्वज्जीवः परात्मनि ॥ ४ ॥

होती, एवं उस अयुक्त पुरुषसे आत्म भावना होना भी असम्भव है; आत्मविचार विहीन पुरुषके चित्तमें शान्तिका उदय नहीं होता, और जबतक शान्तिका उदय न हो, तबतक परमानन्द पदका उदय होना असम्भव है ॥८-११॥

राजयोगक्रम वर्णन

पृथ्वी जलमें लयको प्राप्त होती है, जल अग्निमें लय हो जाता है, अग्नि वायुमें लय होता है, और वायु आकाशमें लय प्राप्त हो जाता है। इस तरहसे विलोम क्रमके अग्निके अनुसार स्थूल भूतोंके लयके अनन्तर बुद्धिमें मन, अहङ्कारमें बुद्धि, चित्तमें अहङ्कार, क्षेत्रज्ञमें चित्त और परमात्मामें क्षेत्रज्ञ लय प्राप्त हुआ करते हैं। इस अवस्थामें कोटि कल्पशतमें किया हुआ पाप समूह भी साधक उत्तीर्ण हो सकता है। घट नष्ट होनेपर तदन्तर्गत आकाश जिसप्रकार महाकाशमें लयको प्राप्त होता है, उसी रूपसे अविद्या विनाशके अनन्तर जीव भी परमात्मामें लय प्राप्त हुआ करता है ॥१-४॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

अधिकारिलक्षणम्

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात् ।
साधनञ्च भवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥ ५ ॥

वैराग्यस्वरूपम्

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु ।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम् ॥ ६ ॥

वस्तुविवेकस्वरूपम्

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम् ।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै ॥ ७ ॥

शमदमलक्षणम्

सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः ।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते ॥ ८ ॥

अधिकारिलक्षण

वर्ण और धर्म समूहोंके यथाविधि साधनसे, तपस्या अभ्याससे, और ईश्वर भक्ति करनेसे, मनुष्य वैराग्यआदि साधन चतुष्टययुक्त होकर राजयोगका अधिकारी हो सकता है ।

वैराग्यस्वरूप

जिसप्रकार सांसारिक मनुष्य काक-विष्ठाको घृणा किया करते हैं, उसीप्रकार ब्रह्मपदसे लेकर यावन्मात्र स्थावर विषयोंको अनिच्छा बुद्धिसे देखनेपर निर्मल वैराग्यका उदय हुआ करता है ।

वस्तुविवेक स्वरूप

एकमात्र आत्मा नित्य है और उसके अतिरिक्त यावन्मात्र सृष्टिके पदार्थ अनित्य हैं, साधकमें जब इसप्रकारका निश्चय ज्ञान हो जाता है, तब उस ज्ञानको वस्तुविवेक कहते हैं ।

शम-दम लक्षण

मानसिक वासनाओंको त्याग करनेको "शम" कहते हैं और इन्द्रिय संयुक्त बहिः वृत्तियोंको "दम" कहते हैं ।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

उपरतितितिक्षालक्षणम्

विषयेभ्यः परावृतिः परमोपरतिर्हि सा ।
सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता ॥ ९ ॥

श्रद्धासमाधानलक्षणम्

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता ।
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ॥१०॥

मुमुक्षालक्षणम्

संसारबन्धनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विधे !
इति या सुदृढा बुद्धिर्मुमुक्षा साऽभिधीयते ॥११॥
उक्तसाधनयुक्तेन विचारः पुरुषेण हि ।
कर्त्तव्यो ज्ञानसिद्ध्यर्थमात्मनः शुभमिच्छता ॥१२॥

उपरतितितिक्षा लक्षण

विषयोंसे अन्तःकरण वृत्तियोंके प्रत्यावर्त्तन करनेका नाम उपरति है और सब प्रकारके दुःखोंके सहन करनेकी शक्तिको "तितिक्षा" कहते हैं ।।५-९।।

श्रद्धासमाधान लक्षण

वेद और गुरु वाक्यमें पूर्ण भक्तिको "श्रद्धा" कहते हैं और चित्तको एकाग्र करके साधनके लक्ष पदार्थपर स्थिर करनेको "समाधान" कहते हैं ।

मुमुक्षालक्षण

साधकमें जब इसप्रकारकी दृढ़ता हो जाय कि, किस उपायद्वारा मैं इस संसाररूप बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ, तो साधकके इसप्रकारकी तीव्र एवं सत् वासनाका नाम "मुमुक्षा" है । ऊपर कहे हुए इन सब गुणोंसे जो साधक युक्त हो, उसीको राजयोगरूपी साधनका उपदेश देना उचित है और ऐसा गुणयुक्त साधक ही योगसिद्धि प्राप्त कर सकता है ।।१०-१२।।

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

अज्ञानस्वरूपम्

आत्माविनिष्कलो ह्येको देहो बहुभिरावृतः ।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१३॥
आत्मा नियामकश्चान्तर्देहो बाह्यो नियम्यकः ।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१४॥
आत्मज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः ।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१५॥
आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो देहस्तामस उच्यते ।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१६॥
आत्मा नित्यो हि सद्रूपो देहोऽनित्यो ह्यसन्मतः ।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥१७॥

अज्ञान स्वरूप

आत्मा अवयव हीन है, इसकारण एक है और देह बहु अवयवोंसे बना है, किन्तु माया बन्धनमें फँस कर मनुष्यगण देह और आत्माका एकत्व सम्बन्ध माना करते हैं, इससे अधिक और अज्ञान क्या है ? आत्मा अन्तरस्थ है और प्रेरक है, परन्तु देह बुद्धिस्थ है एवं उस आत्मासे प्रेरित हुआ करता है, परन्तु बन्धन प्राप्त जीव देह और आत्माको एक ही समझते हैं, इससे अधिक और अज्ञान क्या है ? आत्मा ज्ञानमय और पवित्र है एवं देह मांसआदिसे बना हुआ और अपवित्र है, परन्तु अज्ञानी जीवगण ऐसे देह और ऐसे आत्माका एकत्व सम्बन्ध माना करते हैं, इससे अधिक और अज्ञान क्या होगा ? आत्मा सबका प्रकाशक है और स्वयं प्रकाशरूपी है, किन्तु देह त्रिगुणमय है और तमका आधार है, तो भी अविवेकी मनुष्यगण आत्मा और देहको एक ही माना करते हैं, इससे अधिक अज्ञानकी बात क्या होगी ? आत्मा नित्य और सद्रूप है, किन्तु देह अनित्य ही है, तो भी प्रमादी जीवगण देह आत्माको एक ही मानते हैं । इससे अधिक अज्ञानका रूप और क्या होगा ?

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

कर्मविज्ञानम्

वेदा वदन्ति कर्मास्ति ब्रह्म सारूप्यभागिति ।
सर्वद्वैतप्रपञ्चोऽयङ्कर्माधीनोऽस्त्यसंशयम् ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यजातमथाखिलम् ॥१८॥
ब्रह्माण्डान्तर्गतं सर्वं वहते कर्मनिघ्नताम् ।
अव्यक्ताया दशायाश्च खलु व्यक्तदशोद्भवे ।
कर्मैव कारणं सम्यक् कर्मायत्तमथोऽखिलम् ॥१९॥
अतः कर्माधिकारोऽस्ति सर्वमूर्धन्यताश्रितः ।
अहम्ममेतिबद्भेदो यथा नास्ति स्फुटं तथा ।
शक्ति शक्तिमतोः कर्म तच्छक्त्योर्नास्ति भिन्नता ॥२०॥
स्फुटमुद्भावकं सत्वतमसोः कर्म कथ्यते ।
धर्मः सत्वप्रधानत्वादधर्मस्तद्विपर्ययात् ॥२१॥
गूढं रहस्यं धर्मस्याधर्मस्याप्येतदेव हि ।
जैवेशसहजाख्याभिस्त्रिधा कर्म विभिद्यते ॥२२॥
आश्रित्य सहजं कर्म भुवनानि चतुर्दश ।
जायते च विराट् सृष्टिः जङ्गमस्थावरात्मिका ॥२३॥

कर्मविज्ञान

कर्म ब्रह्मस्वरूप है, ऐसा वेदका सिद्धान्त है। समस्त द्वैत प्रपञ्च और आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्त दृश्य समूह निःसन्देह कर्माधीन है। ब्रह्माण्डान्तर्गत सब ही वस्तु कर्मके अधीन है। अव्यक्त दशासे व्यक्त दशा होनेमें कर्म ही कारण है, कर्म ही के अधीन सब कुछ है, इसलिये कर्मका अधिकार सर्वोपरि है। जैसे ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिमें अहं ममेतिवत् भेद नहीं है, उसीप्रकार ब्रह्मशक्ति और कर्ममें भेद नहीं है। कर्म ही सत्व और तमका उद्भावक होनेसे सत्व प्रधानतासे धर्म और तमः प्रधानतासे अधर्म कहा जाता है। धर्म और अधर्मका यही गूढ़ रहस्य है। कर्म साधारणतः 'जैव, ऐश और सहज' रूपसे तीन भेदोंमें विभक्त है, चतुर्दश भुवन और उनमें स्थावर जंगमात्मक विराट् सृष्टिका प्रकट होना सहज कर्मके अधीन है ॥१८-२३॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

देवासुराधिकारेण द्विविधेन समन्वितम् ।
सञ्जुष्टं नैक वैचित्र्यं भूतसङ्घैश्चतुर्विधैः ॥२४॥

सहजाख्यश्च कर्मैव ब्रह्माण्डं सृजते खलु ।
कर्मभूमर्त्यलोकं हि जैवं कर्म प्रगीयते ॥२५॥

विविधानधिकारांश्च मानवानां यथायथम् ।
स्वर्नरकादिकान् भोगलोकांश्च सृजते पुनः ॥२६॥

मन्निघ्नं सहजं कर्म जैवं जानीत जीवसात् ।
जीवाः सन्ति पराधीनाः सहजे कर्मणि स्थिताः ॥२७॥

जैवे स्वाधीनतां यान्ति जीवाः कर्मणि सन्ततम् ।
सन्त्यतो मानवाः सर्वे पुण्यपापाधिकारिणः ॥२८॥

आभ्यां विचित्रमेवेदमैशं कर्म किमप्यहो ।
साहाय्यमुभयोरेव कर्मैतत्कुरुते किल ।
केवलं त्वैशकर्मैतदवतारेषु जायते ॥२९॥

बीजञ्च कर्मणो ज्ञेयं संस्कारो नात्र संशयः ।
कर्म प्रभावतो नूनं व्यष्टिसृष्टिसमुद्भवे ॥३०॥

सहज कर्म ही चतुर्विध भूतसङ्घ और देवासुररूपी द्विविध अधिकार-सहित अनन्त वैचित्र्यपूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि पैदा करता है। पुनः जैव कर्मकेद्वारा ही कर्मभूमि, मनुष्यलोक, मनुष्योंके यथा योग्य विविध अधिकार और स्वर्ग नरकादि भोग लोककी सृष्टि हुआ करती है। सहज कर्म मेरे अधीन और जैव कर्म जीवोंके अधीन है। सहज कर्ममें जीव स्वतः पराधीन है और जैव कर्ममें जीव स्वाधीन है। इसकारण सब मनुष्य पाप पुण्य भोगके अधिकारी होते हैं। इन दोनोंके अतिरिक्त ऐश कर्म कुछ विचित्र ही है। ऐसा कर्म उभय सहायक है और वह कर्म केवल अवतारोंमें ही प्रकट होता है ॥२४-२९॥

कर्मका बीज संस्कार है। कर्म प्रभावसे व्यष्टि सृष्टि होते समय चित्त और जड़की ग्रन्थि बँधकर जीव भावका प्राकट्य होता है। वही संस्कार उत्पत्तिका स्थान है, ऐसा विज्ञगण समझते हैं। संस्कार ही सृष्टिका प्रधान

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

चिज्जड़ग्रन्थिसम्बंधाज्जीवभावः प्रकाशते ।
स्थानन्तदेव संस्कारसमुत्पत्तेर्विदुर्बुधाः ॥३१॥
सृष्टेः संस्कार एवास्ति कारणं मूलमुत्तमम् ।
प्राकृतोऽप्राकृतश्चैव संस्कारो द्विविधो मतः ॥३२॥
स्वाभाविको हि संस्कारः प्राकृतः कथ्यते बुधैः ।
अस्वाभाविकः संस्कारस्तथाऽप्राकृत उच्यते ॥३३॥
स्वाभाविकोऽस्ति संस्कारस्तत्र मोक्षस्य कारणम् ।
अस्वाभाविकः संस्कारो निदानं वन्धनस्य च ॥३४॥
स्वाभाविको हि संस्कारस्त्रिधा शुद्धिम्प्रयच्छति ।
इह षोडशभिः सम्यक् कलाभिर्वै प्रकाश्यते ॥३५॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म तथा नामकरणश्चान्नप्राशनम् ॥३६॥
चूड़ोपनयने ब्रह्मव्रतं वेदव्रतन्तथा ।
समावर्त्तनमुद्वाहो वाग्न्याधानन्तथैव च ॥३७॥
दीक्षा महाव्रतश्चान्त्यः सन्यासः षोडशो मतः ।
संस्कारा वैदिका ज्ञेया उक्तषोडशनामकाः ॥३८॥
प्रकृतेरोधकास्तत्र संस्कारा अष्ट चादिमाः ।
अन्तिमा अष्ट विज्ञेया निवृत्तेः पोषकाश्चते ॥३९॥

मूल कारण है। संस्कार दो प्रकारका होता है, प्राकृत और अप्राकृत। विज्ञलोग प्राकृतको स्वाभाविक और अप्राकृतको अस्वाभाविक कहते हैं। उनमें स्वाभाविक संस्कार मुक्तिका कारण और अस्वाभाविक संस्कार वन्धनका कारण होता है। स्वाभाविक संस्कार त्रिविध शुद्धि देते हैं। वह षोडश कलाओंसे भलीभाँति निश्चित प्रकाशित होता है। जिनके नाम गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयन, ब्रह्मव्रत, समावर्त्तन, उद्वाह, अग्न्याधान, दीक्षा, महाव्रत और अन्तिम अर्थात् सोलहवाँ संन्यास है। ये संस्कार वैदिक हैं ॥३०-३८॥

उनमें प्रथम आठ संस्कार प्रवृत्ति रोधक हैं और अन्तिम आठ संस्कार निवृत्ति पोषक हैं, सहज कर्मके मूलमें स्वाभाविक संस्कार और जैव

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

स्वाभाविकोऽस्ति संस्कारो मूले सहजकर्मणः ।
मूले तथास्ति जैवस्य संस्कारोऽप्राकृतो मतः ॥४०॥
संस्कारो द्विविधश्चास्ते मूल ऐशस्य कर्मणः ।
स्पष्टमेतद्रहस्यं वै श्रौतसंस्कारगोचरम् ॥४१॥
निखिला एव संस्काराः साद्यन्ताः सम्प्रवर्त्तिताः ।
अतो जीवप्रवाहेऽस्मिन्ननाद्यन्तेऽपि जन्तवः ॥४२॥
मुक्तिशीलास्तथोत्पत्तिशालिनः सन्ति सर्वथा ।
शुद्धिः संस्कारजन्यैव मुक्तेरास्ते सहायिका ॥४३॥
यतः संस्कारसंशुद्धेः कर्मशुद्धिः प्रजायते ।
कर्मशुद्धेस्ततो मुक्तिर्जायते विमलात्मनाम् ॥४४॥
अतः सस्कारजां शुद्धिं जगुः कैवल्यकारणम् ।
बीजमुत्पद्यते वृक्षाद्वृक्षो बीजात्पुनः पुनः ॥४५॥
एवमुत्पद्यमानौ तौ बीजवृक्षौ निरन्तरम् ।
सृष्टिक्रमानन्त्यभावमुभौ द्योतयतो यथा ॥४६॥
एवं सृष्टिप्रवाहोऽयमनाद्यन्तोऽस्ति सर्वथा ।
यथा हि भर्जितं बीजन्नाङ्कुराय प्रकल्पते ।
तथैव कामनानाशात्खलु भर्जितबीजवत् ॥४७॥

कर्मके मूलमें अस्वाभाविक संस्कार और ऐस कर्मके मूलमें उभय संस्कार विद्यमान है, यही श्रौत संस्कारोंका रहस्य है। सब संस्कार ही सादि सान्त हैं; इस कारण जीव प्रवाह अनादि अनन्त होनेपर भी जीव सर्वथा उत्पत्ति और मुक्तिशील है। संस्कार जन्मशुद्धि मुक्तिका सहायक है, क्योंकि संस्कार शुद्धिसे कर्मकी शुद्धि और कर्म शुद्धिसे निर्मल चित्तवालोंका मुक्ति होती है, इसलिये संस्कार शुद्धिको कैवल्यका कारण कहते हैं। जिस प्रकार बीजसे वृक्ष और वृक्षसे पुनः पुनः बीज होते हुए बीज और वृक्ष सृष्टि क्रमकी अनन्तता निरन्तर प्रकाशित करते हैं। वैसे ही सृष्टि प्रवाह अनादि अनन्त है ॥३९-४६॥

भर्जित बीज जिसप्रकार अङ्कुरोत्पत्ति करनेमें असमर्थ है, उसीप्रकार कामनाके नाश हो जानेसे संस्कार समूह भी भर्जित बीजके सदृश होकर

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

संस्कारा अपि जायन्ते सर्वथा मुक्तिहेतवः ।
संस्कारो बीजतुल्योऽस्ति कर्मांत्राङ्कुरसन्निभम् ।
अतो नष्टे हि संस्कारे कर्मणः सम्भवः कुतः ॥४८॥

जन्यत्वात्प्रकृतेः साक्षात्सहजङ्कर्म सन्ततम् ।
उत्पत्तेरपि मोक्षस्य जीवानाङ्कारण विदुः ॥४९॥

प्रातिकूल्येन जैवन्तु जीवानां कर्मबन्धनम् ।
यावज्जैवन्न वै कर्मसंस्कारैर्वैदिकैः शुभैः ॥५०॥

पूर्णशुद्धं सदाप्नोति दशां स्वाभाविकीं हिताम् ।
तावन्नूनं भवेत्पूर्णं जीवकैवल्यबाधकम् ॥५१॥

स्वभावात्प्रकृतिर्नूनं स्पन्दते परिणामिनी ।
स एव स्पन्दहिल्लोलः स्वभावोत्पादितोमुहुः ॥५२॥

सदैवास्ते भवन् स्पष्टं स्वरूपे प्रतिबिम्बितः ।
तस्मात्खलु प्राकृतानां गुणानां परिणामतः ॥५३॥

अविद्याविर्भवेन्नूनं तरङ्गैस्तामसोन्मुखैः ।
सत्वोन्मुखैश्च वै सम्यग् विद्याऽविर्भावमेति च ॥५४॥

ही सर्वथा मुक्तिके कारण बन जाते हैं। संस्कार और कर्म बीज अङ्कुर सदृश हैं, इसलिये संस्कार नष्ट होनेपर कर्मका होना कैसे सम्भव है। सहज कर्म प्रकृतिसे साक्षात् उत्पन्न होनेके कारण बीज उत्पत्तिका भी कारण है और जीव मुक्ति विधायक भी है, इस बातको पण्डितलोग जानते हैं। परन्तु जैव कर्म इससे विपरीत होनेके कारण जीवके बन्धनका कारण है और जबतक वह शुभ वैदिक संस्कारोंसे परिशुद्ध होकर हितकारिणी स्वाभाविक दशाको नहीं प्राप्त होता, तबतक जीवकी मुक्तिका निश्चय ही पूर्ण बाधक रहता है। प्रकृति स्वाभावसे ही परिणामिनी होकर स्पन्दित होती है। वही स्वभाव जनित स्पन्दनका हिल्लोल सदा ही स्वरूपमें बारंबार प्रतिफलित होने लगता है। अतः प्रकृतिके गुण परिणामके कारण तमकीओरकी तरङ्गसे अविद्या औरसत्वकी ओरकी तरङ्गसे विद्या प्रकट अवश्य होती है ॥४७-५४॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

तदाऽविद्या प्रभावेण तरङ्गाणाम्मुहर्मुहुः ।
आघातप्रतिघाताभ्यां जलैः पूर्णे जलाशये ॥५५॥
अगण्यवीचिसङ्घेषु नैकवैधवबिम्बवत् ।
चिज्जड़ग्रन्थिभिस्तत्र स्वत उत्पद्य भूरिशः ॥५६॥
जीवप्रवाहपुञ्जोऽयमनाद्यन्तो वितन्यते ।
तदैवोत्पद्य संस्कारो नूनं स्वाभाविकः खलु ॥५७॥
कर्मणा सहजेनैव विश्वविस्तारकारिणा ।
आविर्भावयते सृष्टिं जङ्गमस्थावरात्मिकाम् ॥५८॥
किन्तु मानवदेहेषु पूर्णे जीवत्व आगते ।
जैवमुत्पद्यते कर्म तत्र तत्क्षणमेव तु ॥५९॥
अस्वाभाविकः संस्कारप्रवाहो वहते ध्रुवम् ।
जैवकर्मप्रभावात्स वैश्ववैचित्र्यसङ्कुलम् ॥६०॥
त्रितापप्रचुरं रक्षेदावागमनचक्रकम् ।
जैवकर्मप्रभावाच्च तस्मादेव भवन्त्यमी ॥६१॥
नरकप्रेतपित्रादि भोगलोकाः स्वरन्विताः ।
मृत्युलोकात्मको नूनं कर्मलोकश्च वर्त्तते ॥६२॥

उस समय अविद्याके प्रभावसे बारम्बार तरङ्गोंके घात-प्रतिघातद्वारा जलपूर्ण जलाशयोंके अगणित तरङ्गोंमें अनेक चन्द्र बिम्बके प्रकाशके समान स्वतः ही अनेक चिज्जड़ ग्रन्थि उत्पन्न होकर अनादि अनन्त जीव प्रवाहको विस्तार करती हैं। उसी समय मेरा स्वाभाविक संस्कार अवश्य उत्पन्न होकर संसार विस्तारकारी सहज कर्मसे ही स्थावर जङ्गमात्मक सृष्टि प्रकट करता है। परन्तु जीवत्वकी पूर्णता मनुष्य शरीरमें प्राप्त होनेपर जैव कर्म उत्पन्न होता है और वहां उसी समय अस्वाभाविक संस्कारका प्रवाह प्रवाहित अवश्य होता है और वह जैव कर्मके बलसे ब्रह्माण्डके वैचित्र्यसे युक्त और त्रितापमय आवागमन चक्रको स्थायी रखता है। उसी जैव कर्मके प्रभावसे स्वर्गलोकसहित नरकलोक, प्रेतलोक, पितृलोकआदि भोगलोक और मृत्युलोकरूपी कर्मलोक प्राप्त होते हैं ॥५५-६२॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

उत्पद्यन्ते तथेमानि भुवनानि चतुर्दश ।
विद्यास्ते पारमेशी या पूर्णसत्त्वगुणान्विता ॥६३॥
एतस्याः कारणत्वेन शक्तिरैशस्य कर्मणः ।
विचित्राऽस्ति तयोस्ताभ्यां कर्मभ्याञ्च सहायिका ॥६४॥
जैवस्य कर्मणो नूनं द्वे गती स्तः प्रधानतः ।
जीवानेका गतिर्जैवी ह्यधस्तान्नयते तयोः ॥६५॥
प्रापयेत जड़त्वञ्च सम्यक् साऽऽस्ते तमोमयी ।
यतश्चाधर्मसम्भूता वर्त्ततेऽसौ निरन्तरम् ॥६६॥
ऊर्द्ध्वम्प्रापयते जीवान्द्रुतं जैव्यपरागतिः ।
स्वरूपञ्चेतनञ्चासावभिलक्ष्यं प्रवर्त्तयेत् ॥६७॥
धर्मस्य धारिका शक्तियुता सत्त्वमयी हि सा ।
इयं किङ्कर्मणो नूनं गतिः सेव्योर्द्ध्वगामिनी ॥६८॥
जैवेन कर्मणा दत्त्वा पदं शुक्लपथान्वयि ।
ऐशेन कर्मणा नूनं पदं त्रैमौर्त्तिकं वरम् ॥६९॥
जीवन्मुक्तिपदं श्रेष्ठं कर्मणा सहजेन च ।
कर्मणो गूढ़विज्ञानं रहस्यं हि प्रकाश्यते ॥७०॥

॥ इति श्री योगशास्त्रेऽध्यात्मविद्यायां राजयोगसंहिता समाप्ता ॥

तथा चतुर्दश भुवन उत्पन्न होते हैं। पूर्ण सत्त्व गुणमयी विद्याके कारण ऐशकर्मकी शक्ति उन दोनों कर्मोंकी सहायक होनेपर भी उनसे विचित्र है। जैव कर्मकी प्रधान दो गति हैं। उनमेंसे एक गति जीवोंको अधः पतित करती है और उनको जड़त्वकीओर ले जाती है, वह तमोमयी गति है; क्योंकि वह अधर्म सम्भूत है। उसीकी दूसरी गति जीवोंको शीघ्र ऊर्द्ध्व करती है और उनको स्वस्वरूप चेतनकीओर प्रवृत्त करती है। वह गति सत्त्वमयी है, क्योंकि वह धर्मकी धारिका शक्तिसे युक्त है। कर्मकी यही ऊर्द्ध्वगामिनी गति सेवनीय है। सहज कर्मसे श्रेष्ठ जीवन्मुक्त-पद ऐश कर्मसे त्रिमूर्त्ति पद और जैव कर्मद्वारा शुक्ल पथगामी पद प्राप्त होता है। यही कर्मका गूढ़ विज्ञान है ॥६३-७०॥

॥ योगशास्त्रमें अध्यात्मविद्याकी यह राजयोगसंहिता समाप्त हुई ॥

॥ इति शम् ॥

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभारतधर्म महामण्डलका महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सनातनधर्मका विश्वकोष

'धर्मकल्पद्रुम'

यथा नाम तथा गुण:की उक्तिको चरितार्थ करनेवाला
आर्ष शास्त्रीय ज्ञानका वाङ्गात्मक कल्पवृक्ष

आठ खण्डोंमें उपलब्ध

सनातन आर्यशास्त्रों, वेद, वेदांग, उपनिषद् आदिका
सर्वांगपूर्ण व्यापक विवेचन। धर्म सम्बन्धी
सभी जिज्ञासाओंका सरल, स्वस्थ और
वैज्ञानिक दृष्टिपूर्ण समाधान!

भगवत्पूज्यपाद महर्षि श्री १००८ श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज
प्रभुके आज्ञानुसार

अनन्त श्रीविभूषित श्रीस्वामी दयानन्दजी महाराज द्वारा
प्रणीत महान् कृति

साम्प्रदायिक पक्षपातसे रहित धर्मका निष्पक्ष प्रतिपादक

मूल्य—प्रथम खण्ड ६·००; द्वितीय खण्ड ३·००; तृतीय खण्ड ३·५०;
चतुर्थ खण्ड ५·००; पंचम खण्ड ३·५०; षष्ठ खण्ड ४·००;
सप्तम खण्ड ३·५० और अष्टम खण्ड ४·००

पुस्तक प्राप्ति स्थान
व्यवस्थापक—शास्त्रप्रकाशन विभाग,
श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्गंज, वाराणसी

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

कर्ममीमांसादर्शन • दैवीमीमांसादर्शन

दो महत्त्वपूर्ण दार्शनिक प्रकाशन

समाधियोगके अद्‌भुत चमत्कारके साक्षात् निदर्शन

१—महर्षि जैमिनीकृत मीमांसादर्शनमें यज्ञ-यज्ञादिका वर्णनमात्र है। मानवजीवनके दैनन्दिन क्रिया-कलापके दो भाग हैं—(अ) कर्मरहस्य व कर्मविज्ञान (आ) कर्मकाण्ड, यज्ञ आदि कालके दुष्प्रभावसे मीमांसा दर्शनका प्रथमार्द्ध लुप्त हो गया था।

२—इसी प्रकार ज्ञानकी छठीं भूमिका दर्शन भक्तिदर्शन भी शताब्दियोंसे लुप्त था। ज्ञानकी सात भूमियोंके अनुसार सातदर्शन थे। प्रचलनमें छः ही थे। यह भक्तिदर्शन लुप्त हो गया था।

भगवत्पूज्यपाद महर्षिज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुने महर्षि भरद्वाज और महर्षि अङ्गिरासे समाधियोगद्वारा सम्पर्क स्थापित किया और दोनों दर्शनरत्नोंका आविष्कार

कर्ममीमांसादर्शन (मीमांसादर्शनके पूर्वार्द्ध) तथा दैवीमीमांसादर्शन (भक्तिदर्शन) के रूपमें प्राप्त किया।

भारतीयदर्शनके जिज्ञासुओंकेलिये अनिवार्यतः

पठनीय और मननीय

—प्राप्तिस्थान—

श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्‌गंज, वाराणसी

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

लययोग संहिता

जिसकी बहुत वर्षोंसे प्रतीक्षा थी, वह लययोग संहिता प्रकाशित हो चुकी है। इसमें संस्कृत श्लोकों-के साथ-साथ उनका सरल हिन्दी अनुवाद भी है, जिससे सभी लोग योगके रहस्यको समझ कर उनकी क्रियाओंसे परिचित होकर योग साधनके पथमें अग्रसर हो सकें। श्रीभारतधर्ममहामण्डलके शास्त्र-प्रकाश-विभागद्वारा यह ग्रन्थ अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। शिक्षा-संस्थाओंके पुस्तकालयों तथा प्रत्येक गृहस्थकेलिये यह उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य २ रुपये मात्र।

पत्र व्यवहारका पता—

व्यवस्थापक, शास्त्रप्रकाश, विभाग

श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्‌गंज वाराणसी

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri

महर्षिपतञ्जलि कृत योग दर्शन

[हिन्दी भाष्य]

योगके लक्षण, धारणाके लक्षण, ध्यानके लक्षण, ध्यानके क्रम, सिद्धियोंका स्वरूप, ईश्वरका स्वरूप आदि योगके गूढ़ एवं रहस्यमय विषयोंको यदि जानना है, तो भगवत् पूज्यपाद मर्हषि अनन्तश्री विभूषित स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुद्वारा रचित योगदर्शनका भाष्य अवश्य पढ़िये। योगकी क्रियाओं तथा उससे होनेवाले हानि और लाभका ज्ञान हो जानेपर योगके चमत्कारोंमें उलझनेकी आवश्यकता नहीं होगी; क्योंकि योग जिज्ञासुका सच्चा पथ-प्रदर्शक होगा। आज ही आदेश देकर एक प्रति अवश्य मँगाइये।

श्रीभारत‌धर्ममहामण्डलसे प्रकाशित अन्यान्य धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थोंके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेकेलिये विषय-सूची मँगाकर देखें।

व्यवस्थापक—

शास्त्रप्रकाश विभाग

श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय, जगत्गंज, वाराणसी

CC-0. Bharat Dharm Mahamandal Collection. Digitized by eGangotri